अथर्ववेद का सुबोध भाष्य ।

द्वितीय काण्ड की विषय सूची ।

सबका पिता	२	बाह्य उपासना का फल	२१
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य		अपने अंदरकी जीवनशक्ति	,,
द्वितीय काण्ड	३	प्राण का प्राण	२२
ऋषि- देवता -छन्द - सूची	,,	ऐसा क्यों कहा है ?	,,
ऋषिक्रमसे सूक्त	६	विरोधालङ्कार	२३
देवताक्रमसे सूक्त	,,	व्यवहारकी बात	,,
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य		जडचेतन का सन्धि - प्राण	,,
द्वितीय काण्ड		स्थूलसे सूक्ष्मका ज्ञान	२४
१ गुह्य-अध्यात्म-विद्या	७	प्रत्यक्षसे अप्रत्यक्ष	,,
गूढविद्या	८	प्राणों का आना और जाना	२५
गूढविद्याका अधिकारी	९	प्राणों का पति	,,
पूर्व तैयारी (प्रथम अवस्था)	,,	ब्रह्माण्ड देह	२६
द्वितीय अवस्था	१०	सारांश -	,,
तृतीय अवस्था	,,	३ आरोग्यसूक्त	२७
पूर्णावस्था	११	औषधि	२८
सूत्रात्मा	१२	शस्त्रों का उपयोग	,,
अमृतका धाम	,,	४ जङ्गिड मणि	२९
गुहा	,,	सण और जङ्गिड	३०
चारभाग	१३	जङ्गिड मणि के लाभ	३१
एकरूप	,,	मणिधारण	३२
अनुभवका स्वरूप	१४	मणिपर संस्कार	३३
जगत्का ताना और बाना	१५	खोजकी दिशा	३४
एकके अनेक नाम	,,	जङ्गिड मणिसे दीर्घायुष्य	,,
वह एकही है	,,	बडा रण	,,
देवोंका अमृतपान	१६	बलवर्धन	३५
२ एक पूजनीय ईश्वर	१७	बल और विजय	,,
गंधर्व और अप्सरा	१८	दूषण	,,
महान् गन्धर्व	१९	अत्रि	३६
ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना	२०	५ क्षत्रिय का धर्म	३७
नामस्मरण	२१	क्षत्रिय के गुण	३८

क्षत्रिय के कर्तव्य	३९	स्वकीय प्रयत्न	,,
राज्यशासन	४०	प्रार्थनाका बल	६१
प्रजासे सन्मान, भोग	,,	मनको धीरज देना	६१
सोम और मद्य	,,	११ आत्माके गुण	६२
जीवन संग्राम	४१	शरीरमें आत्माका कार्य	६३
६ ब्राह्मणधर्म का आदेश	४२	श्रेयः प्राप्ति, उन्नतिका मार्ग	६४
अग्निका स्वरूप	४३	१२ मनका बल बढाना	६५
दीर्घायुष्य, ज्ञान, सत्य	४४	मानस शक्तिका विकास	६६
तेजका वर्धन	,,	त्यागभाव, शुभवचन, ज्ञान	६७
तेजका प्रकार, ऐश्वर्य	,,	जीवितवाणी, शास्त्राछेदन	,,
स्वपक्षियों की उन्नति	,,	असंगास्त्र और ब्रह्मास्त्र	६८
अपने घरमें जागना, उत्साह पुरूषार्थ	४५	सप्तप्राण	,,
मित्रभाव, चित्तवृत्तियोंका सुधार	,,	आठ ग्रंथी, संयमका मार्ग	६९
अन्योक्तिअलंकार-	,,	मरनेकी विद्या,	,,
अरणियोंसे अग्नि	४६	निर्भयऋषिकुमार	७०
७ शापको लोटा देना	४७	आत्मवद्भाव, एकके दुःखसे दूसरा दुःखी	,,
शापका स्वरूप	४८	ज्ञानके विरोधी	,,
दूर्वाका उपयोग	,,	आनुवंशिक संस्कार	७१
मनोविकारोंसे हानि	,,	ईशप्रार्थना	७२
शापको वापस करना	४९	१३ प्रथम वस्त्र परिधान	७३
योग्य मित्र	५०	पुत्रके लिये वस्त्र	७४
दुष्ट हृदय	,,	घरमें वस्त्र बुननेका प्रयोजन	७५
८ क्षेत्रिय रोग दूर करना	५१	स्वस्ति, विनाशसे बचाव	,,
क्षेत्रिय रोग, दो औषधियां	५२	धन, पुष्टि, दीर्घायु	,,
९ सन्धिवातको दूर करना	५३	सुदृढ शरीर	७६
संधिवात	५४	१४ विपत्तियोंको हटानेका उपाय	७७
दशवृक्ष	,,	विपत्तियोंका स्वरूप	७८
उत्तम वैद्य	५५	तीनभेद, आत्मशुद्धि और गृहशुद्धि	७९
प्रवीणताकी प्राप्ति	,,	नीचतामें विपत्तिका उगम	८०
१० दुर्गतिसे बचनेका उपाय	५६	राजा का कर्तव्य, जीवनयुद्ध	,,
दुर्गतिका स्वरूप	५७	१५ निर्भय जीवन	८१
एक मात्र उपाय, ज्ञानका फल	५८	निर्भयतासे अमरपन	,,
उन्नतिका मार्ग	६०	ब्रह्म - क्षत्र	,,
अलंकारकी भाषा	,,	सत्य और अनृत भूत और भविष्य	८२

१६ विश्वंभरकी भक्ति	८३	देवोंकी सहायता	,,
वैश्वानर	,,	२९ दीर्घायु, पुष्टि और सुप्रजा	११०
एक उपास्य देवों द्वारा रक्षा	८४	रस और बल	११२
१७,१८ आत्मसंरक्षण का बल	८४-८५	शतायु	,,
बलकी गणना	८५	अन्न, बल, धन, सुसन्तान और	
स्वाहा विधि	८६	हृदयकी तृप्ति	११४
१९-२३ शुद्धिकी विधि	८७	स्वधा	११५
पांच देव, पंचायतन	८९	३० पति और पत्नीका मेल	११६
पांच देवोंकी पांच शक्तियां	,,	अश्विनी देव	११७
मनुष्यकी शुद्धि, पंचायतन	,,	विवाहका समय	,,
शुद्धिकी रीति	९१	निष्कपट बर्ताव	११८
द्वेष करना	९२	आदर्श पतिपत्नी	,,
२४ डाकुओंकी असफलता	९३	भ्रमणका स्थान	११९
दुष्ट लोग	९४	स्त्रीके साथ बर्ताव	,,
२५ पृश्निपर्णी	,,	३१ रोगोत्पादक क्रिमि	१२०
रक्त दोष	९५	क्रिमियोंकी उत्पत्ति	१२१
रोगका परिणाम, उत्पत्तिस्थान बचावका उपाय	९६	क्रिमियोंको दूर करनेका उपाय	,,
२६ गोरस	९८	३२ क्रिमिनाशन	१२२
पशुपालना	९९	सूर्य किरणका प्रभाव	१२३
भ्रमण और वापस आना	,,	क्रिमियों के लक्षण	,,
दूध और पोषक रस	१००	रोगबीजनाश की विद्या, विषस्थान	,,
२७ विजय - प्राप्ति	१०१	३३ यक्ष्मनाशन	१२४
विजय के क्षेत्र, वादी और प्रतिवादी	१०२	कश्यप - विबर्हण	१२५
युद्धमें विजय	१०३	३४ मुक्तिका सीधा मार्ग	,,
पाटा औषधी	,,	प्राणका आयाम	१२६
शक्ति के साथ वक्तृत्व	१०४	पशुपति रूद्र	१२७
अभिदासन का निषेध	,,	बीजशक्ति	१२८
जलचिकित्सक	,,	योगीका अन्न	,,
२८ दीर्घायुष्य प्राप्ति	१०५	मुक्तिका मार्ग	१२९
दीर्घ आयुष्य की मर्यादा साधन	१०६	विश्वरूपमें एकरूपता	,,
कार्यक्षेत्र, वध	१०७	पशु	१३१
ईशप्रार्थना	१०८	३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण	१३१
देवचरित्रश्रवण	,,	अयाजकोंकी निन्दा	१३२
पापसे बचाव, भोग और पराक्रम	१०९	याजकोंकी प्रशंसा	१३३

ऋषियोंकी प्रशंसा ,,
विश्वकर्ता की पूजा ,,
३६ विवाह का मंगलकार्य १३४
वरकी योग्यता १३५
वधूकी योग्यता १३६
विवाहके पश्चात् ,,
ऐश्वर्यकी नौका १३७
पुरूषका स्थान १३८
पतिके लिये धन ,,
अथर्ववेद द्वितीय काण्डका थोडासा मनन १४१
गणविभाग ,,
विषयविभाग ,,
विशेष द्रष्टव्य १४३
निर्भय जीवन ,,
शुद्धिकरण १४४
मुक्तिका सीधा मार्ग ,,

अथर्ववेदका

॥ द्वितीय काण्ड समाप्त ॥

•••

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य

तृतीय काण्डम्

अपने राष्ट्रका विजय !

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥ २ ॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ३ ॥
एषामहमायुधा सं स्यामेषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ५ ॥

अथर्व० का० ३।१९

"मैं इन अपने लोगोंको राष्ट्रको बल, वीर्य और प्रभावसे युक्त करता हूं तथा मै शत्रुओंके बाहुओंको इस आह्वानके साथ काटता हूं ॥२॥

हमारे शत्रु नीचे गिर जांय, जो हमारे ज्ञानियों और धनिकोंपर सेनासे हमला चढाते हैं वे नीचे गिर जांय॥३॥

मैं इनके आयुधोंको तीक्ष्ण बनाता हूं, मैं इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे युक्त कराके बढाता हूं, इनका क्षात्रतेज अजर और विजयी हो, इनके चित्तको सब देव सचेत करें ॥५॥"

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

तृतीय काण्ड ।

इस तृतीय काण्डका प्रारंभ 'अग्नि' शब्दसे हुआ है । यह अग्नि देवता प्रकाशकी देवता है । अंधेरेका नाश करना और प्रकाशको फैलाना इस देवताका कार्य है । प्रकाश मनुष्यका सहायक और मित्र है और अंधेरा मनुष्यका घातक और शत्रु है । प्रकाशमें मनुष्य बढता है और अंधेरेमें घटता है । इसलिये प्रकाशके देवताका महत्त्व अधिक है और इसलिये इसका नाम मंगलकारक समझा जाता है । ऐसे मंगल वाचक अग्नि शब्दसे इस काण्डका प्रारंभ हुआ है ।

जिस प्रकार कांडमें चार मंत्रवाले सूक्त और द्वितीय काण्डमें पांच मंत्रवाले सूक्त अधिक थे, इसी प्रकार इस तृतीय काण्डमें छः मंत्रवाले सूक्त विशेष है, देखिये -

६ मंत्रवाले १३ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या ७८ है,

७ मंत्रवाले ६ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या ४२ है,

८ मंत्रवाले ६ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या ४८ है,

९ मंत्रवाले २ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या १८ है,

१० मंत्रवाले २ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या २० है,

११ मंत्रवाल्ल १ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या ११ है,

१३ मंत्रवाले १ सूक्त है, इनकी मंत्रसंख्या १३ है,

कुल सूक्तसंख्या **३१** कुल मंत्रसंख्या **२३०**

प्रथम, द्वितीय और तृतीय इन तीन काण्डोंकी तुलना मंत्रसंख्याकी दृष्टिसे अब देखिये -

काण्ड	प्रपाठक	अनुवाक्	सूक्त	काण्डप्रकृति	मंत्रसंख्या
१	२	६	३५	सूक्तमें ४ मंत्र	१५३
२	२	६	३६	सूक्तमें ५ मंत्र	२०७
३	२	६	३१	सूक्तमें ६ मंत्र	२३०

सूक्तोंमें मंत्रोंकी जो संख्या होती है वह उसकी प्रकृति होती है, जैसा प्रथम काण्डके सूक्तोंकी प्रकृति 'मंत्र चार' है अर्थात् इस काण्डके सूक्तोंमें चार मंत्रवाले सूक्त अधिक है और जो अधिक मंत्रवाले सूक्त है वे भी कई सूक्तोंमें चार मंत्रवाले बनाये जा सकते है, इसी प्रकार द्वितीय कांडकी प्रकृति पांच मंत्रकी है और तृतीय काण्डकी छः मंत्रकी है, इस विषयमें अथर्व सर्वानुक्रमणिका कथन यह है -

वेनस्तदिति प्रभृतिराकाण्डपरिसमाप्तेः
पूर्वकाण्डस्य चतुर्ऋचप्रकृतिरित्येवमुत्तरोत्तर
काण्डेषु षष्ठं यावदेकैका तावत्सूक्तेष्वृगिति विजानीयात् ।
(अथर्व. बृ. सर्वानु. १।१३।१)

अग्निर्नः इति.... षड्ऋचं प्रकृतिरन्या विकृतिरिति विजानीयात् । (अथर्व. बृ. सर्वानु. २।१२।१)

'पहिले काण्डकी चार ऋचाओंकी प्रकृति, द्वितीय काण्डकी पांच ऋचाओंकी प्रकृति इस प्रकार छठे काण्डतक एक एक ऋचा सूक्तमें बढती है । तृतीय काण्डकी छः ऋचाओंकी प्रकृति है, अन्य विकृति है ।'

यद्यपि प्रथम, द्वितीय और तृतीय काण्डकी प्रकृति क्रमशः चार, पांच और छः ऋचाओंकी है, तथापि इन काण्डोंमें कई सूक्त ऐसे हैं कि जो इस प्रकृतिसे अधिक मंत्रसंख्यावाले हैं, इसको अथर्व बृहत्सर्वानुक्रमणिकारने विकृति नाम दिया है । विकृतिका अर्थ प्रकृतिमें कुछ विशेषता (विशेष कृति) है । यह विशेषता कई प्रकारची होती है और विशेष रीतिसे मंत्रोंका निरीक्षण करनेसे इसका पता भी लग सकता है, जैसा द्वितीय काण्डके दशम सूक्तकों देखिये । द्वितीय काण्डकी प्रकृति पांच मंत्रोंके सूक्तोंकी है, परंतु इस दशम सूक्तमें आठ मंत्र है, अर्थात् यह विकृति है । यह विकृति इस कारण हुई है कि

'एवाहं त्वा०-० स्ताम् ।' यह मंत्रभाग इस सूक्तमें वारंवार आगया है । यदि यह वारंवार आया हुआ मंत्रभाग अलग किया जाय और एक मंत्रके साथ ही रखा जाय और शेष मंत्रभागोंके दो दो चरणोंके मंत्र माने जाय तो केवल पांच मंत्रोंका ही यह सूक्त हो सकता है । इसी प्रकार कई अन्य रितियां है कि जो अन्य सूक्तोंकी लग सकती है और विकृतिकी प्रकृति बनाई जा सकती है । इससे पाठक जान सकते हैं कि यह विकृति भी बुद्धिपूर्वक ही हुई है और इसके होनेसे सूक्तकी प्रकृतिमें कोई दोष नहीं आता है । इस प्रकार इस काण्डकी प्रकृतिका विचार करनेके पश्चात् अब हम तृतीय काण्डके सूक्तोंके क्रमशः ऋषि, देवता और छन्द देखते है -

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छंद
प्रथमोऽनुवाकः । प्रथमः प्रपाठकः ।				
१	६	अथर्वा	सेनामोहनं, बहुदैवत्यं	त्रिष्टुप्, २ विराड्गर्भा भूरिक् ३, ६ अनुष्टुभ् ५ विराट्पुरउष्णिग् ।
२	६	अथर्वा	बहुदैवत्यं	त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टूभ् ।
३	६	अथर्वा	अग्निः नानादेवता	त्रिष्टुप्, ३च्, भूरिक् पंक्तिः, ५-६ अनुष्टुभ् ।
४	७	अथर्वा	इंद्रः	त्रिष्टुप्, १ जगती, ४, ५ भूरिक्
५	८	अथर्वा	सोमः	अनुष्टूप्, १ पुरोऽनुष्टूप् त्रिष्टुप्, ८ विराडुरोबृहती ।
द्वितीयोऽनुवाकः ।				
६	८	जगद् बीजं पुरुषः	वानस्पत्याश्वत्थदेवत्यं	अनुष्टूभ् ।
७	७	भृगुः-अंगिराः	यक्ष्मनाशनं बहुदेवता	अनुष्टुभ्, ६ भूरिक्।
८	६	अथर्वा	मित्रः, विश्वेदेवाः	त्रिष्टुभ्, २, ६ जगती, ४ च. विराड्बृहतीगर्भा, ५ अनुष्टुभ् ।
९	६	वामदेवः	द्यावापृथिवी, विश्वेदेवाः	अनुष्टुप्, ४ च, निचृद बृहती, ६ भूरिक् ।
१०	१३	अथर्वा	अष्टका	अनुष्टूप्, ४,६,१२ त्रिष्टुप्, ७ त्र्य. ष. विराडँगर्भातिजगती ।
तृतीयोऽनुवाकः ।				
११	८	ब्रह्मा-भृगु-अंगिराः	इन्द्रः, अग्निः, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनं	त्रिष्टुप, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ८ त्र्यं. प. बृहतीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टूप्, ८ उष्णिम्बृहतीगर्भा पथ्यापंक्तिः ।
१२	९	ब्रह्मा	वास्तोष्पतिः, शाला	त्रिष्टुप, ३ बृहती, ६ शक्वरी गर्भा जगती, ७, आर्षीअनुष्टुप्ः ८ भूरिक् ९ अनुष्टुप्
१३	७	भृगुः	वरुणः, सिन्धुः	अनुष्टूप्, १ निचृत्, ५ विराड्-जगती, ६ निचृदनुष्टुप्

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छंद
१४	६	ब्रह्मा	नान्देवताः गोष्ठदेवता	अनुष्टूप्, ६ आर्षीत्रिष्टुप्
१५	८	अथर्वा(पण्यकामः)	विश्वेदेवाः इन्द्राग्नी	त्रिष्टुप्,१, भुरिक्, ४ त्र्यं. ष. बृहतीगर्भा विराडत्यष्टिः, ५ विराड्जगती, ७ अनुष्टुप, ८ निचृत् ।
चतुर्थोऽनुवाकः । द्वितीयः प्रपाठक : ।				
१६	७	अथर्वा	बृहस्पतिः बहुदेवत्यं	त्रिष्टुप्, १ आर्षी जगती, ४ भूरिक्पंक्तिः ।
१७	९	विश्वामित्रः	सीता	अनुष्टूप्, १ आर्षी गायत्री, २,५ ९ त्रिष्टुभः, ३ पथ्यापंक्ति, ७ विराट्पुरउष्णिक् ८ निचृत्
१८	६	अथर्वा	वनस्पतिः	अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतु. उष्णिक्, ६ उष्णिगर्भा पथ्या पंक्तिः ।
१९	८	वसिष्ठः	विश्वदेवाः, चंद्रमाः, इन्द्रः	अनुष्टुप्, १ पथ्यावृहती, ३ भूरिग्बृहती, ६, त्र्य. ष. त्रि. क. गर्भातिजगती, ७ विराडस्तारपंक्तिः, ८ पथ्यापंक्तिः ।
२०	१०	वसिष्ठः	अग्निः मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टूप्, ६ पथ्यापंक्तिः, ८ विराड्जगती ।
पञ्चमोऽनुवाकः ।				
२१	१०	वसिष्ठः	अग्निः	त्रिष्टुप्, १ पुरोनुष्टूप्, २,३,८ भूरिक्, ५ जगती, ६ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ७ विराड्गर्भाः ९ निचृदनुष्टुप्ः १० अनुष्टुप् ।
२२	६	वसिष्ठः	बृहस्पतिः, विश्वदेवाः	अनुष्टुप् । १ विराट्त्रिष्टुप्, ३ पंचपदा परानुष्टुविराडतिजगती, ४ व्यवसानाषट्पदाजगती
२३	६	ब्रह्मा	चन्द्रमाः, योनिः	अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टाद्भुरिबृहती, ६ स्कंधोग्रीवीबृहती ।
२४	७	भृगुः	वनस्पतिः प्रजापतिः	अनुष्टुप्, ५ निचृत्पथ्यापंक्तिः ।
२५	६	भृगुः(जायाकामः)	मित्रावरुणो कामेषुदेवता	अनुष्टुप्
२६	६	अथर्वा	रुद्रःअग्न्यादिबहुदेवत्यं	त्रिष्टुप, २ त्रिष्टुप्, २,५,६ जगती, ३,४ भूरिक्
२७	६	अथर्वा	रुद्रः	अष्टिः, २ अत्यष्टिः, ५ भूरिक् ।

षष्ठोऽनुवाकः ।

२८	६	ब्रह्मा	यामिनी	अनुष्टुप्, १ अतिशक्वरीगर्भा च. अ. जगती, ४ यवमध्या विराट् ककुपः, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराड्-गर्भा प्रस्तारपंक्तिः ।
२९	८	उद्दालक,	शितिपादविः ७ कामः, ८ भूमिः	अनुष्टुप्, १, ३ पथ्यापंक्तिः, ७ त्र्य. ष. उपरिष्टाद्दैवीबृहती कक्कु. ग. विराड्जगती, ८ अपरिष्टाद्बृहती ।
३०	७	अथर्वा	चन्द्रमाः सोमनस्यं	अनुष्टुप्, ५ विराड्जगती, ६ प्रस्तारपंक्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।
३१	११	ब्रह्मा	पाप्म-हा	अनुष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

तृतीय काण्डके सूक्तोंके ये ऋषि देवता और छन्द है। अब इनका विभाग ऋषिक्रमानुसार देखिये -

१ **अथर्वा** - १-५, ८, १०, १५, १६, १८, २६, २७, ३० ये तेरह सूक्त ।

२ **ब्रह्मा** - ११, १२, १४, २३, २८, ३१ ये छः सूक्त।

३ **वसिष्ठः**- १९, २०, २१, २२ ये चार सूक्त

४ **भृगुः**- १३, २४, २५ ये तीन सूक्त ।
भृगु-अंगिराः- ७, ११ ये दो सूक्त ।

५ **जगद्बीजं पुरुषः**- ६ वाँ एक सूक्त ।

६ **वामदेवः**- ९ वाँ एक सूक्त ।

७ **विश्वामित्रः**- १७ वाँ एक सूक्तः ।

८ **उद्दालकः**- २९ वाँ एक सूक्त ।

ये ऋषिक्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवताक्रमानुसार सूक्त देखिये -

१ **बहुदैवत्यं नाना देवताः** - १, २, ३, ७, १४, १६, २६, २७ ये आठ सूक्त ।

२ **विश्वदेवा** - ८, ९, १५, १९, २२ ये पाँच सुक्त ।

३ **अग्निः** - ३, ११, २०, २१, ये चार सूक्त ।

४ **इन्द्रः** - ४, ११, १९ ये तीन सूक्त ।

५ **चन्द्रमाः**- १९, २३, ३० ये तीन सूक्त ।

६ **बृहस्पतिः** - १६, २२ ये दो सूक्त ।

७ **रुद्रः** -२६, २७ ये दो सूक्त ।

८ **वनस्पतिः** - १८, २४ ये दो सूक्त ।

९ **यक्ष्म नाशनं** - ७, ११ ये दो सूक्त ।

१० **सेना मोहनं** - १, २ ये दो सूक्त ।

११ **इन्द्राग्नी** - १५ यह एक सूक्त ।

१२ **सोमः** - ५ यह एक सूक्त ।

१३ **वनस्पत्यःश्वत्थः** - ६ यह एक सूक्त ।

१४ **मित्रः** - ८ यह एक सूक्त ।

१५ **द्यावापृथिवी** - ९ यह एक सूक्त ।

१६ **वरुणः** - १३ यह एक सूक्त ।

१७ **प्रजापतिः** - २४ यह एक सूक्त ।

१८ **मित्रावरुणौ** - २५ यह एक सूक्त ।

१९ **भूमिः** - २९ यह एक सूक्त ।

२० **अष्टका** - १० यह एक सूक्त ।

२१ **सिंधुः** - १३ यह एक सूक्त ।

२२ **आयुष्यं** - ११ यह एक सूक्त ।

२३ **वास्तोष्पतिः** - १२ यह एक सूक्त ।

२४ **शाला** - १२ यह एक सूक्त ।

२५ **गोष्ठः** - १४ यह एक सूक्त ।

२६ सीता - १७ यह एक सूक्त ।

२७ योनि - २३ यह एक सूक्त ।

२८ कामेषुः-२५ यह एक सूक्त ।

२९ यामिनी - २८ यह एक सूक्त ।

३० कामः - २९ यह एक सूक्त ।

३१ सांमनस्यं - ३० यह एक सूक्त ।

३२ पाष्म-हा - ३१ यह एक सूक्त ।

३३ शितिपादविः - ३१ यह एक सूक्त ।

३४ मंत्रोक्ताः - २० यह एक सूक्त ।

इस प्रकार इन सूक्तोंके मंत्रोकी देवतांए है । इनसे और भी देवताएं है जिनका संबंध पाठक विवरणके समय स्वयं समझ जायेंगे । अब इन सूक्तोंके गणोंका विचार देखिये -

सूक्तोंके गण ।

इस तृतीय काण्डके सूक्तोंके गण इस प्रकार लिखे है -

१ अपराजितगण - १९ वाँ सूक्त -

२ तक्मनाशनगण - ७,११ ये दो सूक्त ।

३ वर्चस्यगण - १६,२२ ये दो सूक्त ।

४ आयुष्यगण - ८,११ ये दो सूक्त ।

५ रौद्रगण - २६, २७ ये दो सूक्त ।

६ अंहोलिंगगण - ११ वाँ एक सूक्त ।

७ पाष्म-हा-गण - ३१ वाँ एक सूक्त ।

८ बृहच्छान्तिगण - २१ वाँ एक सूक्त ।

इस प्रकार ये सूक्त इन गणोंके साथ संबंध रखते है। इस काण्डकें अन्य सूक्तोंद्वारा कुछ शांतियां सूचित होती है उनके नाम ये है -

१ आंगिरसी महाशान्ति - ५,६ ये दो सूक्त ।

२ कौमारी महाशान्ति - ७ वाँ एक सूक्त ।

३ ब्राह्मी महाशान्ति - २२ वाँ एक सूक्त ।

इन सूक्तोंका संबंध इन शान्तियोंके साथ हैं । इसलिये अध्ययन करनेके समय पाठक इस बातका विचार करें। खोज करनेवालोंको उचित है कि वे इस शांति प्रकरणकी खोज करे अर्थात् इन शांतियोंका तात्पर्य क्या है और इनकी विधी भी कैसी होती है इत्यादि खोजका विषय है । संभव है कि इस खोजसे अपूर्व ज्ञान प्राप्त होगा । इस काण्डमें शत्रुसेनाके संमोहनका विषय पहले दो सूक्तोंमें आया है और सांमनस्य अर्थात् एकताका विषय तीसवें सूक्तमें आया है -

शत्रुसेनासंमोहनं - १,२ ये दो सूक्त ।

सांमनस्यं - ३० वाँ एक सूक्त ।

ये सूक्त विशेष विचारपूर्वक इस दृष्टिसे पढने योग्य है । इसके अतिरिक्त इस तृतीय काण्डका १५ वा 'इन्द्र महोत्सव' के विषयका सूक्त है, ऐसा कौशीतकी सूत्रमें कहा है । इसलिये इस इन्द्र महोत्सवके विषयमें भी विचार होना चाहिये।

ये सब विषय बडे गंभीर हैं इसलिये आशा है कि पाठक भी इसका विचार गंभीरताके साथ करेंगे । इतनी भूमिकाके साथ अब तृतीय काण्ड शुरु किया जाता है।

●●●

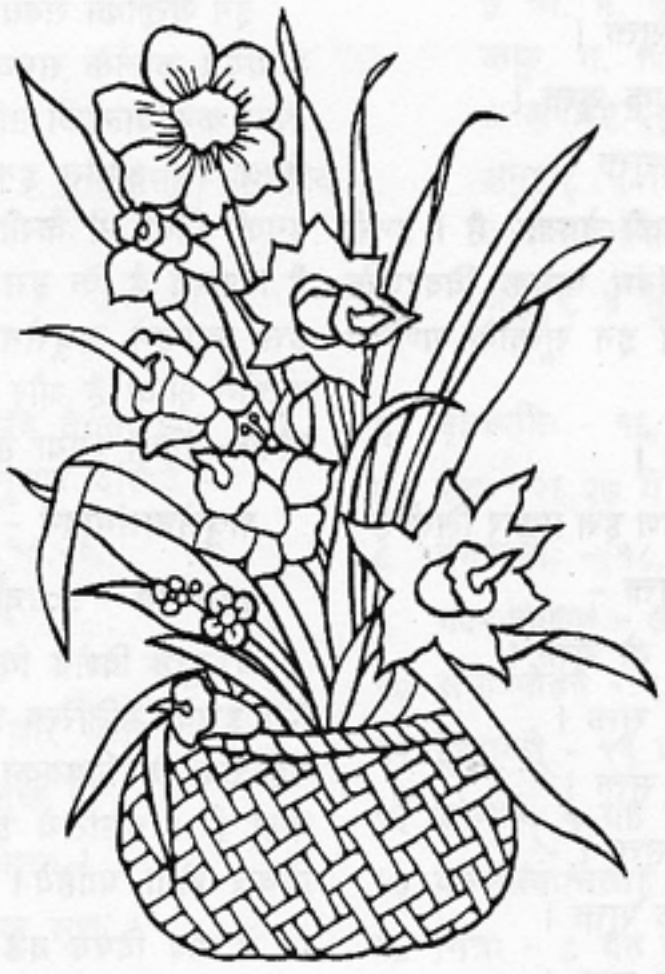

अथर्ववेद का सुबोध भाष्य ।

तृतीय काण्ड ।

शत्रुसेना का संमोहन ।

(१)

(ऋषिः- अथर्वा । देवता - सेनामोहनं, बहुदैवत्यम् ।)

अ॒ग्निर्नः॑ श॒त्रून्प्र॑त्ये॒तु वि॒द्वान्प्र॑ति॒दह॑न्न॒भिश॑स्ति॒मरा॑तिम् ।
स सेनां॑ मोहयतु॒ परे॑षां॒ निर्हस्तां॑श्च कृणवज्जा॒तवे॑दाः ॥ १ ॥
यू॒यमु॒ग्रा म॑रुत ई॒दृशे॑ स्थाभि प्रेत॑ मृणत॒ सह॑ध्वम् ।
अमी॑मृण॒न्वस॑वो॒ नाथि॑ता॒ इमे अ॒मिर्षे॑षां॒ दूतः॒ प्रत्ये॑तु॒ विद्वान् ॥ २ ॥

अर्थ - (**विद्वान् अग्निः**) विद्वान् अग्निसमान तेजस्वी वीर (**अभिशस्तिं अरातिं**) घातपात करोवाले शत्रुको (**प्रति दहन्**) जलाता हुआ (**नः शत्रून् प्रत्येतु**) हमारे शत्रुओंपर चढाई करे । (**सः जातवेदाः**) वह ज्ञानी (**परेषां सेनां**) शत्रुओंको सेनाको (**मोहयतु**) मोहित करे (**च निर्हस्तान् कृणवत्**) और उनको हस्तरहित करे ॥१॥

हे (**मर् - उतः**) मरनेके लिये तैयार वीरो ! (**ईदृशे यूयं उग्राः स्थ**) ऐसे समयमें तुम बडे वीर हो, इसलिये (**अभि प्र इत, मृणत, सहध्वम्**) आगे बढो, काटो और जीत लो । (**इमे नाथिताः वसवः**) ये बलवान् वसनेवाले वीर (**अमीमृणन्**) काटते रहे हैं । (**एषां दूतः विद्वान् अग्निः**) इनका दाहकर्ता ज्ञानी अग्निके समान तेजस्वी वीर (**प्रत्येतु**) विशेष चढाई करे ॥ २ ॥

भावार्थ - राजनीतिको जाननेवाले विद्वान् और तेजस्वी पुरुष घातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाते हुए शत्रुओंपर चढाई करें । सेनासंमोहनकी विद्याको जाननेवाले ज्ञानी शत्रुसेनाको मोहित करें और उनको हस्तहीन जैसे बना देवें ॥१॥

हे मरनेके लिये सिद्ध हुए शूर वीरो ! ऐसे युध्द समयमें तुम बडे वीर हो, इस लिये आगे बढो, शत्रुको काटो और उनको जीत लो । ये बलवान् अपने देशनिवासी वीर शत्रुको काटते है, इनका साथी ज्ञानी तेजस्वी वीर भी शत्रुको जलाता हुआ शत्रुपर चढाई करे ॥२॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ ३ ॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥ ४ ॥
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय ॥ ५ ॥
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥ ६ ॥

अर्थ - हे **(मघवन् वृत्रहन् इन्द्र)** धनवान् शत्रुनाशक सम्राट तथा **(च अग्निः)** हे ज्ञानी ! **(युवं)** तुम दोनों मिलकर **(अस्मान् शत्रूयतीं अमित्र-सेनां)** हमारी शत्रुता करनेवाली शत्रुसेनाको **(अभि)** पराभूत करके **(तान् प्रति दहतं)** उनको जला दो ॥३॥

हे **(इन्द्र)** नरेन्द्र ! **(प्रवता के हरिभ्यां)** वेगसे तेरे हरणशील वेगी द्वारा **(प्रसूतः वज्रः)** चलाया हुआ वज्र **(शत्रून् प्रमृणन् प्र + एतु)** शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढे । **(प्रतीचः, अनूचः, पराचः)** सन्मुख, पीछे और परे भागनेवाले शत्रुओंको **(जहि)** हनन कर दे और **(एषां चित्त)** इन शत्रुओंके चित्तको **(सत्यं विष्वक् कृणुहि)** ठीक प्रकार चारों ओर भटका दे ॥४॥

हे **(इन्द्र)** नरेश ! **(अमित्राणां सेनां मोहय)** शत्रुओंकी सेनाको घबराओ । **(अग्नेः वातस्य ध्राज्या)** अग्निके और वायुके प्रचंड वेगसे **(तान्)** उन शत्रुसैनिकोंको **(विषूचः विनाशय)** चारों ओर भटकाकर नाश कर डाल ॥५॥

(इन्द्रः सेनां मोहयतु) नरेश शत्रुसेनाको मोहित करे, **(मर् + उत्:)** मरनेके लिये सिद्ध हुए वीर **(ओजसा घ्नन्तु)** वेगसे हनन करें । **(अग्निः चक्षूंषि आदत्तां)** अग्नि अर्थात् प्रकाश उनके आंखोंको ले लेवे । इस प्रकार शत्रुका **(पराजिता)** पराभूत हुई सेना **(पुनः एतु)** फिर भी पीछे हटे ॥६॥

भावार्थ - हे धनवान् शत्रुनाशक नरेश ! तथा हे तेजस्वी ज्ञानी वीर ! तुम दोनों मिलकर हमारी शत्रुता करनेवाली शत्रुसेनाको पराभूत करो और उनको जला दो ॥३॥

हे नरेश ! वेगसे चलाया हुआ तुम्हारा शस्त्रका समुदाय शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढे । संमुखसे, पीछेसे और चारों ओरसे भागनेवाली शत्रुसेनाका हनन करके उनके चित्तमें ऐसी घबराहट उत्पन्न करो कि जिससे वे चारों दिशाओंमे भाग जाय ॥ ४॥

हे नरेश ! अग्न्यस्त्रके दाहसे और वायव्यास्त्रके वेगसे शत्रुसेनाको ऐसा घबराओ कि वे चारों दिशाओंमें भाग जांय और इस रीतिसे उनका नाश कर ॥५॥

नरेश शत्रुके सैन्यको घबरावे, शूर वीर वेगसे शत्रूसेनाका हनन करें और शत्रुसेनाकी ऐसी घबराहट करें कि जिससे उनको कुछ भी न दीख पडे और इस प्रकार शत्रुका पूर्ण पराजय होकर उनका पूर्ण नाश हो जावे ॥६॥

इसी विषयका द्वितीय सूक्त है इसलिये उस सूक्तका भी अर्थ हम यहां पहले देखते हैं, और पश्चात् दोनों सूक्तोंका मिलकर विचार करेगें । द्वितीय सूक्त यह है ।

(२)

(ऋषिः अथर्वा । देवता - सेनामोहन, बहुदैवत्यम् ।)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥ १ ॥

अयमग्निरमूमुहद्यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥ २ ॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय ॥ ३ ॥

व्याकृतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

अर्थ - (नः दूतः विद्वान् अग्निः) हमारा दूत ज्ञानी तेजस्वी ज्ञानी तेजस्वी वीर (**अभिशस्तिं अरातिं प्रतिदहन्**) घातपात करनेवाले शत्रुको जलाता हुआ (**प्रत्येतु**) चढाई करे । (**सः जातवेदाः परेषां चित्तानि मोहयतु**) वह ज्ञानी शत्रुओंके चित्तोंको मोहित करे और उनको (**निर्हस्तान् च कृणवत्**) हस्तहीन जैसे करे ॥१॥

(**यानि वः हृदि**) जो तुम्हारे हृदयमें संबंधित है वे (**चित्तानि**) चित्त (**अयं अग्निः अमूमुहत्**) यह तेजस्वी वीर घबराहटमें डालता है । वह (**वः ओकसः विधमतु**) तुमको-शत्रुको घरसे निकाल देवे और (**वः सर्वतः प्रधमतु**) तुमको-शत्रुको सर्व प्रदेशसे हटा देवे ॥२॥

हे (**इन्द्र**) नरेश ! शत्रुके (**चित्तानि मोहयन्**) चित्तोंको मोहयुक्त करता हुआ तू (**आकृत्या अर्वाङ् चर**) शुभसंकल्पसे हमारे पास आ । (**अग्नेः वातस्य ध्राज्या**) अग्नि और वायुके वेगसे (**तान् विषूचः विनाशय**) उनको चारों ओरसे भ्रष्ट कर दे ॥३॥

हे (**एषां**) इन शत्रुओंके (**आकृतयः**) संकल्पो ! (**विश्व**) तुम परस्पर विरुद्ध हो जाओ, पश्चात् तुम (**इत**) हट जाओ (**अथो चित्तानि**) और इनके चित्तो ! (**मुह्यत**) मोहित होओ । (**अथो अद्य**) और आज (**यत् एषां हृदि**) जो इनके हृदयमें संकल्प है (**एषां यत् परि निर्जहि**) इनका वह संकल्प पूर्णतासे नाश कर ॥४॥

भावार्थ - हमारे ज्ञानी स्वयंसेवक वीर घातपात करनेवाले शत्रुसेना पर चढाई करें, शत्रुओंको घबराहटमें डाले और उनको हस्तहीन जैसे बना देवें ॥१॥

शत्रुके चित्तोंको मोहित करे, उनको घरोंसे निकाल देवे और सब देशसे उनको हटा देवे ॥२॥

हे राजन् ! तू शत्रुसेनाके चित्तोंको मोहित कर, अग्न्यस्त्र वायुव्यास्त्रके वेगसे उनको चारों दिशाओंमें भगा दे और पश्चात् विजयपूर्ण शुभ संकल्पसे हमारे पास आ ॥३॥

शत्रुओंके संकल्प आपसमें एक दूसरेके विरोधी हो, उनके दिलोंमें घबराहट पैदा हो, और उनके दिलोंमे जो संकल्प आज हों वे संकल्प कल तक भी स्थिर न रहें ॥४॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्या तमसा विध्य शत्रून् ॥ ५ ॥
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥

अर्थ - हे (अप्वे) व्याधि ! **(अंमीषां चित्तं प्रतिमोहयन्ती)** इनके चित्तको मोहमें डालती हुई शत्रुसेनाके **(अंगानि गृहाण)** अवयवोंको पकडे रखो और **(परा इहि)** परे तक चली जा **(अभि प्र इहि)** सब प्रकारसे आगे बढे । **(हृत्सु शोकैः निर्दह)** हृदयके शोकोंके साथ शत्रुको जला दे । तथा **(ग्राह्या तमसा)** जकडनेवाले रोगसे और मूर्च्छा रोगसे **(अमित्रान् शत्रून् विध्य)** दुष्ट शत्रुओंको त्रस्त कर दे ॥५॥

हे **(मर् + उतः)** मरनेके लिये सिद्ध वीरो ! **(परेषां असौ या सेना)** शत्रुओंकी यह जो सेना **(स्पर्धमाना अस्मान् ओजसा अभि-सा-एति)** स्पर्धा करती हुई हमपर वेगसे चढाई करके आती है, **(तां अपव्रतेन तमसा विध्यत)** उसको कर्महीन करनेवाले अंधकारसे मोहित कर डालो, **(यथा)** जिससें **(एषां अन्य अन्यं न जानात्)** इनमेंसे एक दूसरेको भी न जान सके ॥६॥

भावार्थ - व्याधियां तथा अन्य भय भी शत्रुके दिलको भयभीत कर दे, शत्रुसैनिकोंके अंगप्रत्यंग व्याधियोंसे जकड जाय, शत्रुसैन्य रोगोंसे और नाना प्रकारके भयोंसे त्रस्त हो जाय । संधीवात और मूर्च्छा रोग शत्रुको घबरा देवे ऐसे कठिन समयमें उनपर हमला कर और शत्रुके हृदयोंको शोकसे जला दे ॥५॥

हे वीर पुरुषो ! जो सेना हमारे साथ स्पर्धा करती हुई हमपर चढाई करके आ रही है उसको ऐसा मोहित करो कि वे पुरुषार्थहीन होकर मूर्च्छितसे हो जाय और अनमेंसे एक मनुष्य दुसरेको जान भी न सके ॥६॥

सेनाका संमोहन ।

ये दो सूक्त शत्रुसेनाके संमोहनका विषय बता रहे हैं। जो शत्रुकी सेना मारती और काटती हुई अपने राष्ट्रपर अथवा अपने सैनिकोंपर चढाई करके आ रही है, वह मोहित करके, घबराकसर पराभूत करनी चाहिये और उसको भगा देना चाहिये । इसका नाम है 'सेना संमोहन' ।

कई लोग कल्पना करते है कि यह शत्रुकी सेनाका संमोहन मंत्र सामर्थ्यसे होता है, परंतु वास्तविक बात वैसी नहीं है । यह संमोहन केवल घबराहट ही है अर्थात् शत्रुसेना पर ऐसे हमले करने कि शत्रुसैनिकोंको कर्तव्यमूढ बन कर भाग जाना ही एक मार्ग जीव बचानेके लिये अवशिष्ट रहे ।

ये दोनों सूक्त स्पष्ट है और इतने ही विषयका यहां अधिक विवरण करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है ।? तथापि इन सूक्तोंमें कई शब्दप्रयोग ऐसे किये गये है, कि जिनका विशेष स्पष्टीकरण करना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा संदेह उत्पन्न होना संभव है । इन सूक्तोंमें 'अग्नि, इन्द्र, मरुत्' आदि शब्द है, जिनके अर्थ देवता प्रसंगमें अग्नि, विद्युत्, वायु आदि लिये जाते है, तथा अध्यात्म प्रसंगमें वाणी, मन और प्राण लिये जाते हैं, इस विषयका स्पष्टीकरण पूर्व काण्डोंमें आ चुका है । ये दोनों प्रसंग इन दोनों सुक्तोंमें नही है । इन सूक्तोंका विषय युद्ध है, शत्रुसेना मोहनका संबंध है, अपनी सेनाी और शत्रुसेनाका झगडा होनेका अवसर है, इस लिये यह न अध्यात्मका विषय है और ना ही आधिदैवतका विषय है । प्राणियोंके परस्परके संबंधका वर्णन आधिभौतिक प्रकरणमें हुआ करता है । इस कारण आधिभौतिक प्रकरणको प्राणी समष्टि विषयका प्रकरण कहा जाता है और इस प्रकरणमें उक्त शब्दोंके अर्थ प्राणिविषयक होते है अर्थात् यहां मनुष्यप्राणि विषयक भाव समझना उचित है । अब उक्त शब्दोंके अर्थ देखिये -

१ इन्द्र ।

(इन् + द्र) शत्रुसेनाका भेदन करनेवाला, यह इसका धात्वर्थ है परंतु मुखिया इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग होता है, जैसा मृगेन्द्र = मृगोंका मुखिया, सिंहः खगेन्द्र = पक्षियोंका मुखिया गरुड, नरेन्द्र = मनुष्योंमें मुख्य

राजा अथवा सम्राट इ. । इन्द्र शब्दके ये अर्थ प्रसिद्ध है, परंतु प्रायः लोग केवल 'इन्द्र' शब्दका अर्त 'राजा' करनेके समय डरते है । उनकों इन दो सूक्तोंका अच्छा मनन करना उचित है । इस मननसे उनको पता लग जायगा कि ऐसे प्रसंगोंमें मनुष्य विषयक ही इन्द्रादि शब्दोंका अर्थ लेना योग्य है । इस विषयको अच्छी प्रकार समझमें आनेके लिये इन दो सूक्तोंके कई वाक्य उदाहरणके लिये लेते है -

१ **इन्द्र ! ते प्रसूतः वज्रः शत्रून् प्रमृणन् एतु।**
प्रतीचः अनूचः जहि ।
एषां चित्तं विष्वक् कृणुहि ॥(सू. १, मं. ४)

२ **इन्द्र ! अमित्राणां सेनां मोहय ।**
अग्नेः वातस्य ध्राज्या विषूचः तान् विनाशय ॥
(सू. १, मं. ५)

३ **इन्द्र सेनां मोहयतु ॥** (सू. १, मं. ६)

४ **इन्द्र ! चित्तानि मोहयन् आकृत्या अर्वाङ्चर ॥**
(सू. २. मं. ३)

'(१) हे राजन् ! तेरे द्वारा चलाया हुआ शस्त्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे चले । सब ओरके शत्रुओंका हनन कर इन शत्रुओंके चित्तको चारों ओर भटकनेवाला कर ॥ (२) हे राजन् ! शत्रुकी सेनाको मोहित कर । अग्नि और वायुके प्रवाहसे शत्रुसेनाको चारों ओर भगा दे ॥(३) राजा शत्रुसेनाको घबरा देवे ॥(४) हे राजन् ! शत्रुसेनाको मोहित करके अपने शुभ संकल्पसे हमारे पास चला आ ॥'

इस प्रकारके ये मंत्र इन्द्र शब्द द्वारा राजाका कर्तव्य बता रहे है । यहां 'राजा, नरेन्द्र, सम्राट्' आदि प्रकारका ही इस शब्दका अर्थ है । यहां इन्द्र शब्द क्षात्रशिरोमणी वीर राजाका वर्णन कर रहा है, जो स्वयं युद्ध भूमिमें उपस्थित रहकर अपनी सेनाको चलाता है और केवल सेनापति पर ही निर्भर नहीं रहता है । इसी इन्द्रके अन्य पर्याय भी इन सूक्तोंमें आ गये है वे अब देखेंगे -

२ मघवन् ।

'(मघ) धन (वन) वाला । जिसके पास धन है । जो राजा अपने पास बहुत धनसंग्रह रखता है वही युद्धमें विजय पा सकता है । युद्धमें विजय प्राप्त करनेका यह एक बडा भारी साधन है, धनहीन राजा यदि युद्धका प्रारंभ करेगा तो उसके पराभूत होनेमें कोई संदेह ही नही है । इस शब्दसे बोध होने वाला यह अर्थ पाठक देखे और राजाका बल धनकोशमें होता है यह बात जान लें ।'

३ वृत्रहन् ।

'(वृत्र) घेरनेवाले शत्रुको (हन्) हनन', करनेवाला । अर्थात् जो शत्रु घेरकर हमला करता है अथवा मार्ग रोकता है उसको अपने शस्त्रोंके प्रभावसे मारता है, उसका यह नाम है ।

इस प्रकार इन्द्रवाचक शब्द और उसके वर्णनपरक मंत्र वीर राजाके कर्तव्य बता रहे हैं । पाठक यह वैदिक शैली जानेंगे तो उनको बहुत मंत्रोंका गंभीर आशय इस रीतिसे स्पष्टतया ध्यानमें आ सकता है । इन्द्रके साथ 'मरुत्' रहते ही हैं, इनके विषयमें अब देखिये -

४ मरुतः ।

(मर् + उत्) मरनेके लिये जो उठकर खडे हुए हैं, मरनेके लिये जो तैयार हुए है, शत्रुका पराभव करनेके लिये अपने प्राणोंकी आहुती देनेके लिये जो कटिबद्ध हुए है, उन वीरोंका यह नाम है । इन्द्रकी सेनाके मरुत् नामक जो वीर है उनका अर्थ वर्णन भी इस अर्थकी सार्थकता बता रहा है । यह शब्द सैनिकोंका उत्साह बता रहा है । इस प्रकारके उत्साही वीर जिस सेनामें होंगे उनका विजय निःसंदेह हो सकता है । इस शब्दका प्रयोग जिन मंत्रोंमें है उनके उदाहरण यहां देखिये -

१ **हे मरुतः ! ईदृशे यूयं उग्राः स्थ । अभिप्रेत, मृणत, सहध्वम् ।** (सू. १, मं. २)

२ **मरुतः ओजसा घ्नन्तु ।** (सू. १, मं. ६)

३ **हे मरुतः ! या असो परेषां सेना स्पर्धमाना अस्मान् अभ्येति, तां अपव्रतेन तमसा विध्यत, यथा एषां अन्यः अन्यं न जानात् ॥**
(सू. २, मं. ६)

'(१) हे मरनेके लिये तैयार वीरो ! ऐसे प्रसंगमें तुम सब बडे उग्र हो । इस लिये आगे बढो, काटो और वैरीको पराभूत करो ॥(२) वीर लोग बलके साथ वैरीको काटें ॥(३) हे वीरो ! यह जो वैरीकी सेना हमारे साथ स्पर्धा करती हुई हमपर धांबा कर रही है, उसको कर्महीन मोहमय तमसे विद्ध करो, जिससे उनका एक मनुष्य दूसरेको पहचान न सके ॥'

ये मरुतोंके मंत्र स्पष्टतया सैनिक वीरोंके कर्तव्य बता रहे हैं । युद्धमें सेनाके वीर कैसा उग्र कर्म करें, उसका उपदेश यहां इस प्रकार मिल रहा है । इसका मनन करके क्षात्रतेजसे युक्त वीर पुरुषोंको बडा उत्साह आ सकता है । इसके नन्तर 'वसवः' शब्द देखिये -

५ वसवः ।

वसनेवालोंका नाम 'वसु' है । जो अपने राष्ट्रमें अपने अधिकारसे वसना चाहते है, शत्रुके हमले होनेपर भी स्वयं अपने स्थानसे हिलना नहीं चाहते वे 'वसु' होते है । इन वसुओंके विषयमें अर्थववेदमें ही अन्य स्थानमें कहा है -

संवसव इति वो नामधेयं उग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ॥ (अथर्व. ७-१०९-६)

'आपका नाम संवसु (संवसवः) है, आप देखनेके लिये अति उग्र है और राष्ट्रका भरण पोषण करनेवाले हैं और आप राष्ट्रके (अक्षाः) आंख ही है ।' इस मंत्रमें वसु उग्र राष्ट्रभृत्य है ऐसा कहा है । इसलिये हम यहां इस सूक्तके प्रसंगमें 'वसु' पदका अर्थ' उग्र राष्टभृत्य' अर्थात् 'शूरवीर राष्ट्रीय स्वंयसेवक' करते है । यह अर्थ लेनेसे प्रचलित सूक्तके मंत्रभागका अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है देखिये -

इमे नाथिता वसवः अभीमृणन् ।
एषां दूतः अग्निः विद्वान् प्रत्येतु ॥(सू. १, मं. २)

'ये प्रभावशाली राष्ट्रभृत्य वैरी सेनाको काटते हैं । इनका विद्वान् दूत अग्नि वैरीपर चढाई करे ।' इस मंत्रमें हमें पता लगता है कि यहांका अग्नि शब्द वसुओंमेंसे एक वसुका वाचक है अर्थात् यदि उक्त प्रकार 'वसु' राष्ट्रभृत्य है, तो 'अग्नि' भी वसुओंमेंसे एक राष्ट्रभृत्य अथवा राष्ट्रका दूत' है जो समयज्ञ है और बडा चतुर भी है । इन्द्र और अग्निमें यह भेद है, पाठक इसका मनन करें । इन्द्र स्वयं सम्राट अथवा राजा है, वह स्वयंसेवक या राष्ट्रभृत्य नही है और अग्नि राजा नहीं है परंतु राष्ट्रभृत्य है । अग्नि विद्वान् है और इन्द्र धनवान् है । ये विशेषणोंद्वारा बताये भेद पाठक मननपूर्वक देखे और सोचे । ये भेद ही वैदिक राज्यपद्धतिका स्वरुप स्पष्ट कर देते है। इस प्रकार वसु शब्दका अर्थ देखनेके पश्चात्, और अग्निको उनमेंसे एक जाननेके पश्चात् अब अग्निका अर्थ देखते है ।

६ अग्निः ।

वसु शब्दके जो लक्षण पूर्व शब्दके वर्णनके प्रसंगके बताये हैं वे इसके साथ भी संगत होते है । यह प्रकाशका देव है, शत्रुको जलाता है और उपासकको तेजप्रदान करता है। यह (विद्वान्) ज्ञानी है, समयज्ञ है, कर्तव्य अकर्तव्यको ठीक प्रकार समझता है । यह (जात-वेदाः = जातं वेत्ति) बने हुए वस्तुस्थितिको यथावत् जाननेवाला है । पाठक देखे कि ऐसा योग्य राष्ट्रभृत्य (दूतः) राष्ट्रका दूत, कितना उपयोगी होगा, और ऐसे युद्धके प्रसंगमें इस प्रकारके राष्ट्रदूतकी सेवाका कितना लाभ राष्ट्रको हो सकता है ।

अग्नि ब्राह्म तेज और इन्द्र क्षात्रतेज व्यक्त करता है, जिस समय राष्ट्रपर आपत्ति आती है उस समय ये दोनों मिलजुलकर राष्ट्रकार्य करें, इस विषयकी सूचना इन सूक्तोंमें मिलती है । इस विषयका मंत्र देखिये -

हे वृत्रहन् इन्द्र ! अग्निः च यूयं तान् प्रतिदहतम् ।
(सू. १, मं.३)

'हे वीर राजन् ! तू और ज्ञानी राष्ट्रभृत्य दोनों मिलकर शत्रुको जला दो ।' यहां मिलकर कार्य करनेका उपदेश है । ब्राह्मतेज और क्षात्रतेज इकट्ठा होकर वैरीका नाश करे । ऐसा कभी न हो कि वैरी राष्ट्रके द्वारमें उपस्थित होवे और राष्ट्रके ये दोनों भाग आपसमें झगडते रहें । यह तो राष्ट्रघातकी अवस्था होगी, इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंको अपना अभेद्य ऐक्य रखना चाहिये और अपने राष्ट्रकी उन्नतिमें ही अपनी उन्नति देखनी चाहिये ।

शत्रुको घबरानेकी रीति ।

वैरीको घबराना, उसको मोहित करना, उसको भ्रमित करना और उसको परास्त करना, इत्यादिके उपाय इन दो सूक्तोंमें कहे है । जिनमेंसे हमले करनेकी कई विधियां इससे पूर्वके स्पष्टीकरणमें आचुकी है । अब कुछ विशेष साधनोंका उल्लेख करना है जो यहां करेंगे -

१ **अग्न्यस्त्र और वायव्यास्त्र** के प्रयोगसे वैरीका नाश करनेकी पहिली रीति इन सूक्तोंमें कही है -

अग्नेः वातस्य ध्राज्या तदान् विनाशय ॥
(सू. १, मं.५, सू. २, मं.३)

'अग्निके वेगसे और वायुके वेगसे उन शत्रुओंका नाश कर। यहां ध्राजी शब्द है, अग्निका (ध्राजी) महावेग और वायुका महावेग, इनके धक्केसे शत्रुका नाश करना लिखा है। ध्राजी शब्दका अर्थ केवल वेग, गति इतना ही नही है, जिस वेगके धक्केसे मनुष्य नष्टभ्रष्ट होते है, मनुष्य अपने स्थानपर ठहर नहीं सकते, उस महावेगके प्रबल धक्केका आशय इस 'ध्राजी' शब्दमें है । इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि यहांके 'अग्ने, ध्राजी, वातस्य ध्राजी' ये दो शब्द क्रमशः अन्यस्त्र और वायव्यास्त्र अथवा इसी प्रकारके शस्त्रास्त्र विशेषके वाचक होंगे। इसी

स्पष्टीकरणमें इससे पूर्व अग्नि शब्दका अर्थ मनुष्य वाचक बताया है, परंतु वह अर्थ यहां नहीं है । एकही सूक्तमें एकही अग्नि शब्दके दो परस्पर भिन्न अर्थ है यह बात यहां स्मरण रखना चाहिये, अन्यथा अर्थका विपर्यास होनेमें देरी नहीं लगेगी ।

२ तमसास्त्र - तमसास्त्रका प्रयोग भी इसमें है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है -

तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् । (सू. २, मं. ६)

'उस शत्रुसेनाको पुरुषार्थहीन करनेवाले तमसास्त्रके प्रयोगसे विद्ध करो जिससे उनका एक सैनिक दूसरे सैनिकको न पहचान सके ।' इस मंत्रमें 'अपव्रतं तमः' शब्दका प्रयोग है । तम शब्दका अर्थ 'अन्धकार' है। अपव्रतका अर्थ 'कर्महिन' है । दोनोंका तात्पर्य 'कर्महीन' करनेवाला अंधेरा है । इससे शत्रुसेनाको वेध करना है । वेध करनेके लिये शस्त्रास्त्र ही चाहिये, अन्यथा वेध नहीं हो सकता । इसलिये इस मंत्रमें तमसास्त्रका उल्लेख है ऐसा स्पष्ट दीख रहा है । अन्धकारास्त्रके प्रयोगसे ही सैनिक एक दूसरेको पहचाननेमें असमर्थ होंगे । इसी अर्थका एक मंत्रभाग प्रथम सूक्तमें है -

अग्निः चक्षूंषि आदत्ताम् । (सू. १. मं.६)

'अग्नि शत्रुकी आंसे ले लेवे ' इस वाक्यका भी आशय तमसास्त्र प्रयोगका ही है क्योंकि यहां हरएककी आंसे निकाल देनेका आशय नहीं है, परंतु उनको कुछ भी न दीख पडे यही आशय है । तथा और देखिये -

अमित्रान् शत्रून् तमसा विध्य । (सू. २, मं. ५)

'शत्रुओंको अन्धकारास्त्रसे विद्ध कर ।' यहांका 'विध्य' शब्द भी अस्त्ररूप तमको सूचित करता है । यह मंत्र अन्यत्र आगया है वह भी यहां देखिये -

अन्धेन तमसा अमित्रान् सचन्ताम् ।

(ऋ. १०।१०३।१२, यजु. १७।४४, साम. उ. ९।३।५, निरु. ९।३३)

तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यं जानात् । (यजु. १७।४७)

'शत्रुओंको अन्धतमसे ढांप दो' इत्यादि मंत्रभागोंमें भी किसी प्रकारके अस्त्रका ही उल्लेख है अन्यथा वेध करना असंभव है ।

३ अप्वा, ग्राही - सूक्त २, मं. ५ में 'अप्वा और ग्राही' इन दो रोगोंके द्वारा शत्रुके चित्तोंको मोहित करने अथवा उनको त्रस्त करनेका उल्लेख है । 'ग्राही' शब्दका अर्थ संधिवात इसी अथर्ववेदमें इससे पूर्व अनेक वार आया है । यह अर्थ यदि यहां लिया तो संधिवात जैसे जकडनेवाले रोगद्वारा शत्रुको त्रस्त करनेकी बात व्यक्त हो सकती है । अप्वा शब्दका अर्थ रोग, व्याधि अथवा भय है । परंतु यह युद्ध प्रसंग है इस लिये इन शब्दोंके कोई दूसरे अर्थ भी होना संभव है । यद्यपि ठीक पता नहीं है तथापि 'ग्राही' शब्दका अर्थ 'पाश' होना संभव है, जिससे शत्रुको पकडा जाय और जकडकर बांधा जाय। 'अप-वे' धातुसे यदि 'अप्वा' शब्द बनाया जाय तो 'वे' धातुका अर्थ, 'तन्तु-संतान' होनेके कारण अप्वा शब्दका अर्थ 'जल अथवा जाला' होना संभव है । मंत्रमें -

अप्वे ! परेहि, अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती अङ्गानि गृहाण ॥ (सू. २, मं. ५)

'हे अप्वे ! आगे बढ, इनके चित्तोंको मोहित करके उनके अंगोंको पकड रख ।' यह अप्वा अस्त्रका वर्णन स्पष्ट बता रहा है कि इस नामका किसी प्रकारका जाला शत्रुपर फेंका जाता है, जिसमें पकडे जानेके कारण शत्रु मोहित हो जाते है और पश्चात् उनके शरीर पकड वा जकडकर बांधे जाते है। इस मंत्रमें 'परेहि, अंगानि गृहाण' आदि वर्णन यह 'अप्वा' कोई शत्रुपर फेंकने योग्य जालेका अस्त्र है ऐसा निश्चय करता है । अर्थात् 'ग्राही और अप्वा' ये दोनों जालेके समान शत्रुको पकडनेके कुछ साधन विशेष होंगे ऐसा हमारा तर्क है, इस विषयके अर्थके लिये इस समयतक कोई प्रमाण हमें मिला नहीं है । खोज करनेवाले पाठक इस विषयकी विशेष खोज करके अर्थनिश्चय करनेमें सहायता दे ।

मंत्रोंकी समानता ।

इन दोनों सूक्तोंमें मंत्रोंकी समानता है । दोनों सूक्तोंका पहला मंत्र कुछ थोडे पाठभेदसे करीब एक जैसा ही है। प्रथम सूक्तका ५ वाँ मंत्र और द्वितीय सूक्तका ३ रा मंत्र करीब एक जैसा ही है । प्रथमार्धमें थोडा पाठभेद है । यह समानता पाठक अवश्य देखें ।

इन दोनों सूक्तोंके मननसे युद्ध विषयक बहुत ही बोध प्राप्त हो सकता है । आशा है कि इस दृष्टिसे पाठक इन सूक्तोंका अध्ययन करके लाभ उठावेंगे ।

राजाकी स्वराज्यपर पुनः स्थापना ।

(३)

(ऋषिः-अथर्वा । देवता - अग्निः, नानादेवताः)

अचिक्रदत्स्वपा इह ध्रुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥ १ ॥
दूरे चित्सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद्गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥ २ ॥
अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥
श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं ते इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

अर्थ - **(इह स्व-पाः भुवत्)** यहां अपना रक्षण करनेवाला मनुष्य होवे ऐसा **(अचिक्रदत्)** पुकारकर कहा गया है । हे (अग्ने) अग्ने ! **(उरुची रोदसी व्यचस्व)** विस्तृत द्यावापृथिवीमें अपना तेज फैलाओ । **(विश्ववेदसः मरुतः त्वा युञ्जन्तु)** सब जाननेवाले मरुत् तुझे योग्य बनावें । **(रात-हव्यं अमुं)** हवनीय पदार्थोंको देनेवाले इस पुरुषको **(नमसा आनय)** नमस्कारपूर्वक यहां ला ॥१॥

(दूरे चित् सन्तं विप्रं इन्द्रं) दूर रहनेवाले प्राज्ञ इन्द्रको भी **(अरुषासः सख्याय आच्यावयन्तु)** तेजस्वी लोक मित्रताके लिये यहां ले आवें । **(यत् देवाः)** क्योंकि सब देव **(सौ-त्रामण्या)** सौत्रामणीके द्वारा **(गायत्रीं बृहतीं अर्कं अस्मै दधृषत)** गायत्री बृहती रुप अर्चन इसके लिये धारण करते है ॥२॥

(वरुणः राजा) राजा वरुण **(अद्भ्यः त्वा ह्वयतु)** जलके लिये तुझे बुलावे, **(सोमः त्वा पर्वतेभ्यः ह्वयतु)** सोम तुझे पर्वतोंके लिये बुलावे **(इन्द्रः त्वा आभ्यः विड्भ्यः ह्वयतु)** इन्द्र तुझे इन प्रजाओंके लिये बुलावे । **(श्येनः भूत्वा इमाः विशः आपत)** तू श्येन पक्षीके समान वेग धारण करके इन प्रजाओंमें आ जा ॥३॥

(अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तं हव्यं) अन्य देशमें छिपकर घूमनेवाले बुलाने योग्य राजाको **(श्येनः परस्मात् आनयतु)** श्येनवत् शीघ्रगामी दूसरे देशसे ले आवे । **(अश्विनौ सुगं ते पन्थां कृणुतां)** दोनों अश्विनी सुखसे जाने योग्य तेरा मार्ग बनावें । **(सजात्यः इमं अभि सं विशध्वं)** सजातीय लोग इसको प्रविष्ट करें ॥१॥

भावार्थ - इस जगत्में मनुष्यको अपना संरक्षण स्वयं करना चाहिये, यह बात पुकार पुकारकर सब आप्तपुरुषोंने कही है । मनुष्य अग्निवत् तेजस्वी बने और अपना प्रकाश जगत्में फैलावे । ऐसे अपने राजाको सब जाननेवाले वीर शक्तिमान करें और उसको नमनपूर्वक अपने राज्यगद्दीपर स्थापित करें ॥१॥

राजा दूर भी क्यों न गया हो उसको अपने राज्यके हितके लिये तेजस्वी वीर पुनः ले आवें, उत्तम रक्षण करनेके योग्य प्रबंधसे उसका उत्तम सत्कार करें ॥२॥

जलस्थानकी रक्षाके लिये जलाधिपति, पर्वतोंकी रक्षाके लिये पर्वतोंका अधिकारी, जनोंकी रक्षाके लिये मनुष्योंका अधिपति किंवा मुखिया सम्राटको बुलावें, तब सम्राट् अपने प्रजाओंमें शीघ्रतासे जाकर विराजे ॥३॥

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥ ५ ॥
यस्ते हवं विवदत्सजातो यश्च निष्टयः ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहावं गमय ॥ ६ ॥

अर्थ - (**प्रतिजनाः त्वा ह्वयन्तु**) प्रत्येक प्रकारके लोग तुझे बुलावें । (**मित्राः प्रति अवृषत**) मित्र तेरा बल बढावें । (**इन्द्राग्नी विश्वदेवाः**) इन्द्राग्नी और सब देव (**विशि ते क्षेमं अदीधरन्**) प्रजाजनोंमें तेरे लिये क्षेम धारण करें ॥५॥

हे (**इन्द्र**) नरेन्द्र ! (**यः सजातः**) जो सजातीय है (**च या निष्टयः**) और जो विजातीय है (**ते हवं विवदत्**) तेरे आदरणयिताके विषयमें विवाद करे, (**तं अपाञ्चं कृत्वा**) उसको बहिष्कृत करके (**अथ इमं इह अव गमय**) पश्चात् इसकी यहां लाओ ॥६॥

भावार्थ - राजा संकट समयमें अन्य देशमें छिप छिपकर भी क्यों न रहता हो, उसको पुनः अपनी राजगद्दीपर लाकर बिठलाना उचित है, ज्ञानी उसका मार्ग सुगम करें और सजातीय लोग उसको अपनें राज्यमें प्रविष्ट करावें ॥४॥

मित्रजन उस राजाका बल बढावें और उसकी सहायता करें, सब देव प्रजाके समेत उस राजाका कल्याण करें ॥५॥

यदि सजातीय अथवा विजातीय कोई मनुष्य इस योग्य राजाका विरोध करनेवाला हो तो उसको राज्यसे बाहर करके बडे आदर सत्कारसे राजाका प्रवेश अपने राज्यमें कराना चाहियै ॥६॥

यहां तृतीय सूक्तका अर्थ और भावार्थ हुआ । इसीके साथ चतुर्थ सूक्तका अत्यंत घनिष्ठ संबंध है इसलिये उसका अर्थ और भावार्थ पहले देखकर पश्चात् दोनों सूक्तोंका मिलकर विचार करेंगे -

•••

राजा का चुनाव ।

(४)

(ऋषिः- अथर्वा । देवता - इन्द्रः, नानादेवताः)

आ त्वा गन्राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज ।
सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥ १ ॥

अर्थ - हे राजन् ! (**राष्ट्रं त्वा आगन्**) यह राष्ट्र तुझको प्राप्त हुआ है, अब (**वर्चसा सह उद् + इहि**) तेजके साथ उदयको प्राप्त हो । (**विशांपतिः प्राङ् एकराट् त्वं विराज**) प्रजाओंका स्वामी प्रमुख एक सम्राट् होकर तू विराजमान हो । (**सर्वाः प्रदिशः ह्वयन्तु**) सब दिशा और उपदिशाएं तुझे पुकारें और (**इह उपसद्यः नमस्यः भव**) यहां पास पहुंचने योग्य और नमस्कारके लिये योग्य हो ॥१॥

भावार्थ - हे राजन् ! यह राष्ट्र अब तुझको प्राप्त हुआ है अब अपने तेजको प्रकाशित कर, सब प्रजाओंका एक सम्राट् होकर विराजमान हो । सब दिशा और उपदिशामें रहनेवाले सब लोग तुझे ही चाहें और तू सबके लिये प्राप्त होनेवाला बनकर सबसे सुपूजित हो ॥१॥

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ २ ॥

अच्छा त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै ।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥ ३ ॥

अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥ ४ ॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत्स उपेदमेहि ॥ ५ ॥

अर्थ - **(विशः त्वां राज्याय वृणतां)** प्रजायें तुझको राज्यके लिये स्वीकार करें **(इमाः देवीः पञ्च प्रदिशः)** ये दिव्य पांच दिशायें **(त्वां वृणतां)** तुझको राज्यके लिये स्वीकार करें । तू **(राष्ट्रस्य वर्ष्मन् ककुदि श्रयस्व)** राष्ट्रके ऐश्वर्यमय उच्च स्थानपर आश्रय कर **(ततः उग्रः)** पश्चात् उग्र वीर बनकर **(नः वसूनि वि भज)** हम सबके लिये धनोंका विभाग कर ॥ २॥

(हविनः सजाताः त्वा अच्छ यन्तु) बुलानेवाले सजातीय लोग तुझको सन्मानपूर्वक मिलें **(अग्निः अजिरः दूतः संचरातै)** अग्नि वेगवान् दूत संचार करे । **(जायाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु)** स्त्रियां और पुत्र उत्तम मनवाले हों । **(उग्रः बहुं बलिं प्रति पश्यासै)** उग्र होकर तू बहुत भेंटको देख ॥३॥

(अग्रे) आगे **(अश्विनौ, मित्रावरुणौ, विश्वदेवाः, मरुतः)** अश्विनी, मित्रावरुण, सब देव और मरुत् **(त्वा त्वा ह्वयन्तु)** तुझको बुलावे । **(अध वसु-देयाय मनः कृणुष्व)** पश्चात् तू धनका दान करनेके लिये अपना मन कर **(ततः उग्रः नः वसूनि वि भज)** पश्चात् उग्र होकर हम सबको धनका भाग दे ॥४॥

(परमस्याः परावतः आ प्रद्रव) अति दूर देशसे यहां आ **(उभे द्यावापृथिवी ते शिवे स्तां)** दोनों द्यावापृथिवी तेरे लिये कल्याणकारी होवें । **(तथा अयं राजा वरूणः)** वैसा ही यह वरूण राजा **(तत् आह)** यह कहता है **(सः अयं त्वा अह्वत्)** वह यह तुझको बुलावे **(सः इदं उप - आ - इहि)** वह तू इस राष्ट्रको प्राप्त कर ॥५॥

भावार्थ - सब प्रजाएं राज्य चलानेके लिये तेरे ही स्वीकार करें । सब दिशा और उपदिशाओंमें रहनेवाले प्रजानन तुझे ही पसंद करें । तू राष्ट्रके परम उच्च ऐश्वर्यवान् राजपदपर आरूढ होकर, वीर बनकर, हम सबके लिये धनको योग्य विभागसे बांट दे ॥२॥

तेरी इच्छा करनेवाले सजातीय लोग सन्मानपूर्वक तेरे पक्षमें रहें, अग्निके समान तेरे तेजस्वी दूत चारों देशोंमें संचार करें। तेरे राष्ट्रमें धर्मपत्नियां और बालबच्चे उत्तम मनवाले हों । तू शूरवीर होकर बहुत भेंट प्राप्त कर ॥३॥

सब देवताएं तेरी सहायता करें । तू धनका दान करनेमें अपना मन स्थिर कर और शूरवीर होकर हम सबमें योग्य विभागसे धन बांट दे ॥४॥

यदि तू दूर देशमें भी गया तो भी अपने राष्ट्रमें शीघ्र ही वापस आ । सब देव तेरी सहायता करें । तू सदा अपने राष्ट्रमें ही रह ॥५॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्याऽ३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत्स्वे सधस्थे स देवान्यक्षत्स उ कल्पयाद्विशः ॥ ६ ॥
पथ्याऽ रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥ ७ ॥

अर्थ - हे **(इन्द्र - इन्द्र)** राजाओंके महाराजा ! **(मनुष्याः परेहि)** मनुष्योंके समान परे जा और **(हि वरूणैः संविदानः)** वरिष्ठोंसे मिलकर तू **(सं अज्ञास्थाः)** ठीक प्रकार जान सकता है । **(सः अयं स्व सधस्थे त्वा अह्वत्)** वह यह अपने घर तुझे बुलावे **(सः देवान् यक्षत्)** वह देवोंका यज्ञ करे, और **(स उ विशः कल्पयतात्)** वह निश्चयसे प्रजाओंके समर्थ करे ॥६॥

(पथ्याः रेवतीः) सन्मार्गसे चलनेवाली धनवाली **(बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य)** बहुत प्रकारसे विविध रूपवाली सब प्रजाएं मिलकर **(ते वरीयः अक्रन्)** तेरे लिये श्रेष्ठ स्थान बनाती है । **(ताः सर्वाः संविदानाः त्वा ह्वयन्तु)** वे सब एकमत होकर तुझे बुलावे पश्चात् तू **(इह उग्रः सुमनाः दशमीं वश)** यहां उग्र और उत्तम मनवाला होकर दसवी दशकतक राज्यको वशवर्ती कर ॥७॥

भावार्थ - तू साधारण मनुष्योंके समान ही अपने आपको मानकर देशमें सर्वत्र भ्रमण कर और राष्ट्रके वरिष्ठ मनुष्योंमें मिलकर सब बातें ठीक प्रकार समझ लो । ऐसा करनेसे लोग अपने घरमें तुझे आदरसे बुलावेंगे और वे यज्ञयाग भी करेंगे। इस प्रकार प्रजाओके साथ मिलजुलकर सब प्रजाको सब प्रकारसे समर्थ कर ॥६॥

प्रजा सन्मार्गसे चलनेवाली हो, और धनवान् हो । बहुत प्रकारके रंगरूपोंसे विभिन्न रहनेपर भी सब प्रजा मिलकर एक भावसे तुझे श्रेष्ठ माने और सब एकमतसे तेरी प्रशंसा करे । इस प्रकार वीरतासे और शुभ मनोभावसे राज्य करता हुआ तू सौ वर्षतक राज्य अपने वशमें रख ॥७॥

पूर्व सम्बन्ध ।

इस तृतीय काण्डके प्रारंभके दो सूक्तोंमें युद्ध विषय है । शत्रुसेनाके साथ युद्ध करके उसका पूर्ण पराभव करनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश इन दो सूक्तोंमे है । इस प्रकार विजय प्राप्त होनेके पश्चात् अपने राजाका राजधानीमें प्रवेश होता है, उस समयके उत्सवके ये मंत्र है, अथवा इस विजयको प्राप्त करके राजा वापस आगया तो उस समय उसे करने योग्य उपदेश इन दो सूक्तोंमें है । तृतीय और चतुर्थ सूक्त विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे और एक बात प्रतीत होती है, वह यह है कि - 'किसी समय शत्रूसैन्य द्वारा परास्त हुआ राजा किसी दूसरे देशमें या जंगलोंमें छिपकर रहता है और उसके राज्यपर दूसरे विदेशी राजाका अधिकार होता है । ऐसे समयमें राज्यमें रहनेवाले लोग तथा पुराने समयके अधिकारसंपन्न वीर राज्यक्रान्ति करनेका यत्न करे, पुरुषार्थ प्रयत्नसे शत्रुका पराभव करें और अपने पुराने राजाको लाकर बडे सन्मानके साथ पुनः राजगद्दीपर स्थापित करे ।' यह भी उपदेश यहां दिखाई देता है । पुराणोंमें इन्द्रकी एक कथा भी इस प्रकारकी रची हुई है, कि असुरोंके द्वारा इन्द्रका पराभव हुआ, वह भाग गया और छिपकर किसी प्रदेशमें रहा, देवोंने अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे असुरोंका पराभव करके इन्द्रको ढूंढा और पुनः इन्द्रपदपर स्थापित किया । यह कथा महाभारत उद्योगपर्व अ. १० से १५ तक पाठक देख सकते हैं । पाठक इन सब राजकीय घटनाओंको मनमें रखते हुए इन दो सूक्तोंका अभ्यास करें और मनन करें । ऐसा करनेसे ही इन सूक्तों द्वारा राजनीतिका बहुतसा उपदेश मिल सकता है ।

आत्मरक्षा ।

तृतीय सूक्तने सबसे प्रथम आत्मरक्षाका बडा महत्त्वपूर्ण संदेश प्रारंभमें ही कहा है । यह संदेश हरएक वैदिकधर्मीको ध्यानमें धारण करना चाहिये -

इह स्व-पा भुवत् (इति) अचिक्रदत् ॥

(सू. ३, मं, १)

'यहां आत्मरक्षा करनेवाला मनुष्य बने, ऐसा पुकार पुकार कर कहा गया है ।' इस जगत्में यदि मनुष्यको संमानसे जीवित रहना है तो (स्वपाः) आत्मरक्षा करना

उसके लिये अत्यावश्यक है । यह बात जैसी एक मनुष्यके लिये सत्य है वैसी ही एक समाज और एक राष्ट्रके लिये भी सत्य है । जिस समय एक समाज आत्मरक्षा करनेमें दक्ष नहीं रहता उस समय दूसरा समाज उसपर हमला चढानेमें प्रवृत्त होता है । इसी प्रकार जिस समय एक राष्ट्र आत्मरक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है, उसी समय दूसरा राष्ट्र उसपर आक्रमण करता है और उसको परतंत्र बनाकर उसपर अधिकार चलाने लगता है । आत्मरक्षा करनेकी असमर्थता बडा भारी अपराध है, जो राष्ट्र परतंत्र हुए है वे स्वानुभवसे इस वैदिक उपदेशका महत्त्व जान सकते हैं । आत्मरक्षाका अत्यंत महत्त्व है इसीलिये इस मंत्रने कहा है कि यह बात वारंवार पुकार पुकार कर कही है । जो बात अत्यंत महत्त्वकी होती है वही वारंवार पुकार पुकार कर कही जाती है । इस कारण जो बात वेदने अनेक वार पुकार पुकार कर कही है दह मनुष्यमात्रकी उन्नतिकी दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है इसमें कोई संदेह ही नही है । पाठक इस दृष्टिसे इस आत्मरक्षाके वैदिक उपदेशका स्मरण रखें ।

आत्मरक्षाका सामर्थ्य न रखनेवाला राष्ट्र और उसका राजा ही परास्त होता है और आपत्तिमें गिरता है । आत्मरक्षा करनेवालेकी तेजोवृद्धि होती है इस विषयमें इसी मंत्रका अगला भाग देखिये

अहो ! उरुची रोदसी व्यचस्व ॥(सू. ३, मं. १)

'अग्निके समान तेजस्वी ! तू इस विशाल द्यावापृथिवीके अंदर फैल जाओ ।' आत्मरक्षा करनेवालेका आदर्श अग्नि है, यह अग्नि सदा उर्ध्व गतिसे जलता और प्रकाशता है । 'अग्नेः उर्ध्वज्वलंन ' अग्निकी ज्वलनकी गति उच्चगति है । उच्चगतिवाले सदा उन्नत ही होते रहेंगे और अपना तेज फैलायेंगे और संपूर्ण जगत्को प्रकाशमान करेंगे । आत्मरक्षा करनेवालोंका यश जगत्में चारों दिशाओंमें फैलता ही है । आत्मरक्षा करनेवालेकी गति तो अग्निके प्रचंड् प्रकाशसे बताई है । जिसकी नित्य देखकर वैदिकधर्मी आत्मरक्षा करनेके अपने कर्तव्यको कभी न भूलें । अब देखिये कि आत्मरक्षा न करनेवालेकी अवस्था क्या होती है -

अन्यक्षत्रे अपरुद्धं चरन्तं ॥(सू. १, मं. ४)

'दूसरेके देशमें प्रतिबंधमें भटकता है ।' जो आत्मरक्षा नही करता वह दूसरेके अधिकारमें प्रतिबंधमें पडता है, दूसरे देशमें छिपछिपकर रहता है, किसी न किसी प्रकार बंदिस्तानेमें सडता रहता है । यह आत्मरक्षा न करनेका परिणाम है । यह परवशताका भयानक परिणाम आत्मरक्षा न करनेसे प्राप्त होता है यह जानकर मनुष्य, समाज, राष्ट्र तथा राजा आत्मरक्षा का अपना परमश्रेष्ठ कर्तव्य कभी न भूले, यह आदेश वेद इस सूक्तद्वारा देता है और वारंवार उद्घोषित करता है कि मनुष्य इस आत्मरक्षाकी बातको कभी न भूले।

सौत्रामणी याग ।

'सौत्रामणी' नामक एक बडा भारी यज्ञ है । इसमें मुख्य ध्येय अथवा साध्य क्या है वह तैत्तिरीय संहिताके वचनसे स्पष्ट होता है -

इन्द्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्य परापतत् ।
तद्देवाः सौत्रामण्या समभरन् ॥

(तै. सं. ५।६।३।४)

'इन्द्रका वीर्य दस दिशाओंमें विभिन्न मार्गोसे विभक्त हो गया था, वह देवोंने सौत्रामणी यागसे एकत्रित किया।' अर्थात् इस सौत्रामणी यागका साध्य बिखरी हुई शक्तिको इकट्ठा करना है । 'सु + त्रामन्' शब्दका अर्थ है (सु) उत्तम (त्रामन्) रक्षा करनेकी बुद्धिपूर्वक शक्ति । यह जिससे प्राप्त होती है उसको 'सौ-त्रा-मणी याग' कहते है । पूर्वोक्त तैत्तिरीय संहिताके वचनमें भी बिखरी हुई इन्द्रकी शक्ति इकट्ठी करनेके लिये ही सौत्रामणी याग बनाया गया और उस यागसे वह शक्ति केन्द्रीभूत होगई इत्यादि बात स्पष्ट है । अर्थात् सौत्रामणी यागसे संगठन होता है और राष्ट्रीय शक्ति बढती है। इसीलिये इस तृतीय सूक्तके द्वितीय मंत्रमें सौत्रामणी यज्ञके द्वारा राज्यभ्रष्ट राजाको फिर राज गद्दीपर लाते हैं, ऐसा कहा है -

दूरे सन्तं विप्रं इन्द्रं सस्याय अरुषासः
आच्यावयन्तु । (सू.३, मं. २)

'राज्यसे दूर हुए ज्ञानी नरेन्द्रको सस्यके लिये तेजस्वी लोग उस गुप्त स्थानसे यहां लावे ।' राज्यभ्रष्ट राजा जंगलोंमें या (अन्य-क्षेत्रे अपरुद्ध चरन्त । मं. ४) दूसरे देशमें छिप छिपकर रहता है उसको पुनः राज्यभर स्थापित करनेके लिये ज्ञानी लोग अपने राज्यमें ले आवें, उसका सस्य पुनः जनताके साथ पूर्ववत् हो, और ज्ञानी इन्द्रही राजगद्दीपर बैठ जावे, इसलिये यह सब प्रयत्न है । यह सब प्रयत्न करनेके लिये सौत्रामणी याग किया जाता है ऐसा इसी द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है -

देवाः अस्मै गायत्रीं बृहतीं अर्के सौत्रामण्या दधृषन्त ।

(सू. ३, मं. २)

'देव इस राजाके लिये गायत्री, बृहती आदि रूप अर्चन सत्कार सौत्राणी यागके द्वारा करते है ।' राजगद्दीपर

राजाको बिठलानेका प्रबंध करनेके लिये सौत्रामणी याग करते है, इस यागसें अपनी बिसरी हुई शक्तिको इकट्ठी करते है और उस शक्ति द्वारा उस राजाको अपने राज्यमें लाकर उसका बडा सत्कार करते हैं । इस सत्कारका स्वरूप देखिये -

वरुणो राजा त्वा अद्भ्यः ह्वयतु ।
सोमः त्वा पर्वतेभ्यः ह्वयतु ।
इन्द्रः त्वा आभ्यः विड्भ्यः ह्वयतु ॥
(सू. ३, मं. ३)

अश्विना ते सुगं पन्थां कृणुताम् ॥
(सू. ३, मं. ३)

प्रतिजनाः त्वा ह्वयन्तु, मित्राः प्रति अवृषत ॥
(सू. ३, मं. ५)

'वरुण राजा जलस्थानोके संरक्षणके लिये तुझे बुलावे, सोम राजा पर्वतोंकी रक्षाके लिये तुझे बुलावे, इन्द्र तुझे इन प्रजाजनोंकी सुव्यवस्थाके लिये बुलावे । अश्विदेव यहां आनेका तेरा मार्ग सुगम करें । प्रत्येक प्रजाजन आदरसे तुझे बुलावे और मित्र सदा तेरा बल बढावें ।'

राज्य प्रबंधमें समुद्र किनारेका प्रबंध, पर्वत स्थानोंका प्रबंध ये दो प्रबंध अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके हैं और प्रजाजनोंके सुप्रबंधका कार्य राष्ट्रके अंतर्गत व्यवहारका है । समुद्रमें नौका, जलदुर्ग आदिकी रक्षाका प्रबंध करना होता है और पर्वतोंपर भी कीले आदिका प्रबंध आवश्यक होता है । प्रजाकी सुव्यवस्थाका प्रबंध तो राज्यशासनका मुख्य भाग है ही, इसमें कोई संदेह नहीं है । इन प्रबंधोको करनेके लिये राजाको पुनः राजगद्दीपर स्थापित किया जाय, यह तात्पर्य यहां है । राजाके कर्तव्योंकी भी सूचना यहां मिलती है । सब देवताओंकी सहायता भी इस राजाको प्राप्त हो और इस प्रकार देवताओंकी सहायतासे बलवान बना हुआ अपने देशका राजा शत्रुके लिये असह्य हो, यह इच्छा प्रजाजनोंके नेताओंके अन्तःकरणमें रहना चाहिये । देखिये इस विषयमें अगला मंत्र ही कहता है -

इन्द्राग्नी विश्वे देवाः विशि ते क्षेमं अदीधरन् ।
(सू. ३, मं. ५)

'इन्द्र, अग्नि और संपूर्ण अन्य देव प्रजामें तेरा कल्याण संवर्धित करे ।' अर्थात् इन देवोंकी कृपासे तेरी प्रजाका भी कल्याण होवे और प्रजाके आनंदके साथ तेरा भी कल्याण होवे । यहां -

ते क्षेमं विशि । (सू. ३, मं. ५)

'तेरा (राजाका) कल्याण प्रजामें बसता है ।' अर्थात् प्रजाजनोंके कल्याण होनेसे ही राजाका कल्याण होना संभव है अन्यथा नही । जो राजा प्रजाके कल्याणके साथ अपने कल्याणका संबंध नही जानता वह सच्चा राजा ही नहीं है । यजुर्वेदमें भी कहा है कि -

विशि राजा प्रतिष्ठितः । (यजु. २०।९)

'प्रजाके आश्रयसे राजा सुप्रतिष्ठित होता है ।' प्रजा न हो तो राजा कहां रहेगा ? परन्तु राजा न होनेकी अवस्थामें प्रजा रह सकती है, इस कारण कहते है कि राजा प्रजाके आश्रयसे रहता है, परन्तु प्रजा राजाके आश्रयके बिना भी रह सकती है । अतएव राजाका कल्याण प्रजाके कल्याणमें है । **'ते क्षेम विशि'** इस अथर्व मंत्रका इस दृष्टिसे पाठक मनन करें । ऐसे राजाको सजातीय लोग अपने राज्यमें पुनः स्थापन करें, इस विषयमें इस सूक्तका चतुर्थ मंत्र देखिये -

सजाताः इमं (राजानं) अभि - सं - विशध्वम् ॥
(सू. ३, मं. ४)

'सजातीय लोग इस राजाको (अभि) चारों ओरसे (सं) ठीक प्रकार (विशध्वं) प्रवेश करावे ।' राजा अपने राष्ट्रमें आवे तो स्वजातीयोंके साथ ही आवे । वे उशकी सुरक्षितताका प्रबंध करें और चारों ओर उत्तम प्रबंध रखें, राजाकी सुरक्षितताके लिये उत्तम यत्न किया जाय और स्वराष्ट्रमें ऐसे सुप्रबंधके साथ उसका प्रवेश कराया जाय । स्वजायीत (सजाताः) लोग ही राजाके रक्षक हो सकते है, परजातीय लोग किस समय धोखा देंगे इसका कोई नियम नहीं है, इसलिये राजा भी स्वजातीय लोगोंके ऊपर अधिक विश्वास रखे और उनका योग्य सन्मान करता रहे । नहीं तो कई राजा ऐसे होते हैं कि जो विदेशियों और परकीयोंपर तो अधिक विश्वास रखते है और स्वदेशीयों तथा स्वजातीयोंपर अविश्वास करते हैं । इस आत्मघातके बर्तावका परिणाम उसको अंतमें बुरी तरह भोगना पडता है । इसलिये इस मंत्रभागने स्वजातीय लोगोंकी विश्वासमें लेनेकी सूचना की है जो राजनीतिमें विशेष महत्त्वकी है । जहां स्वजातीय लोग सहायताके लिये तैयार है वहा राजा विश्वाससे वेगपूर्वक जावे और अपना कार्य प्रारंभ करे, इस विषयमें यह मंत्र देखिये -

श्येनः भूत्वा इमाः विशः आपत ॥(सू. ३, मं. ३)

'श्येन पक्षीके समान वेगसे इस प्रजामें आ पड' अर्थात् जहां प्रजाजनोंके भद्र पुरुष सहायता करनेके तैयार है वहां राजाके त्वराके साथ पहुंचकर अपना प्रजापालनका कार्य करना चाहिये ।

विरोधी मनुष्य ।

सजातीय लोग प्रायः सदा राजाकी सहायताके लिये तैयार ही रहेंगे, क्योंकि राजाका गौरव बढनेसे उनका भी यश बढता ही है, तथापि कई लोग शत्रुपक्षको मिलकर उत्तम राजाको राष्ट्रमें पुनः स्थापित करनेके विरोधी भी होना संभव है, उनका क्या किया जाय, यह शंका यहां हो सकती है, इस शंकाका उत्तर इस सूक्तके षष्ठ मंत्रने दिया है, देखिये -

यः सजातः, यः च निष्टयः ते हवं विवदत्,
तं अपाञ्चं कृत्वा, अथ इमं इह अवगमय ॥

(सू. ३, मं. ६)

'कोई सजातीय अथवा कोई विजातीय या विदेशीय मनुष्य तेरे राज्यारोहणके शुभ प्रसंगके विरुद्ध विवाद खडा करनेवाला हो तो उसको बहिष्कृत करके, पश्चात् इस राजाको यहां ले आओ ।'

सर्व संमतिसे जिस राजाको राज्यकी गद्दी दी जाती है, उसके विरुद्ध कार्यवाही करनेवाला यदि कोई मनुष्य हो तो (अपाञ्चं तं कृत्वा) उसको अलग करके ही अन्य श्रेष्ठ लोगोंको अपना प्रशस्त कर्तव्य करना चाहिये । राज्यकी अंतर्गत व्यवस्था करनेके प्रसंगमें इस प्रकारके कई झगडे होते ही रहते है, इस लिये उसको दूर करनेका एक उपाय यहां बताया है, इसके अनुसंधानसे पाठक अन्य उपद्रव दूर कर सकते हैं ।

चतुर्थ सूक्त ।

यहां तृतीय सूक्तका विचार समाप्त हुआ और अब इसी विषयसे संबंध रखनेवाले चतुर्थ सूक्तका विचार करते है । तृतीय सूक्तका संबंध बाहर रहनेवाले राजाको पुनः स्वराज्यमें लाकर राज्यपर स्थापित करनेके महत्त्वपूर्ण कार्यके साथ है और इस चतुर्थ सूक्तका संबंध सर्वसाधारण राजाको और विशेषतः प्रजाके चुने हुए राजाको राजगद्दीपर बिठलानेके कार्यके साथ है, इसलिये इस चतुर्थ सूक्तका संबंध एक रीतिसे तृतीय सूक्तके साथ है और दूसरे विचारसे देखा जाय तो यह चतुर्थ सूक्त स्वतंत्र भी है । राजाका राज्याभिषेक इस चतुर्थ सूक्तका मुख्य विषय है। इस सूक्तमें प्रजाद्वारा राजाका चुनाव होनेका वर्णन मुख्य स्थान रखता है, वही पहले देखेंगे -

राजाका चुनाव ।

राजाका पुत्र हो अथवा नया ही योग्य वीर हो, उसकी प्रजाकी संमतिसे ही राज्य प्राप्त होता था । श्रीरामचंद्र जैसे सर्वमान्य पुरुषोंको को राज्य प्राप्त होनेके लिये प्रजाकी अनुमति लेनी पडी थी, इस बातको देखनेसे प्रजाकी संमति प्रबल शक्ति रखती थी ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है, इस सूक्तने इस वैदिक रीतिपर बहुत ही उत्तम प्रकाश डाला है, देखिये -

प्रदिशः देवीः इमाः पञ्च विशः त्वां राज्याय वृणताम् ।

(सू. ४, मं. २)

'दिशा उपदिशाओंमें रहनेवाली यह दिव्य पांच प्रकारकी प्रजा तुझको राज्यके आधिपत्यके लिये चुनें ।' प्रजा राज्यशासन चलानेके लिये तेरा स्वीकार करे, ऐसा कहते, मात्रसे राजगद्दीपर राजाको रखने या न रखनेका अधिकार प्रजाके आधीन है यह बात स्वयं सिद्ध होती है। अथर्ववेदमें इस बातको बतानेवाले कई सूक्त हैं, उनका विचार उनके स्थानपर यथावकाश होगा, पाठक भी ऐसे स्थान स्थानपर आनेवाले उल्लेखोंको इकट्ठा करके सबका मिलकर इकट्ठा विचार करेंगे तो उनको वैदिक राजानीति शास्त्रका ज्ञान होगा । अस्तु । इस प्रकार राजाचा चुनाव करके उनको राज्यपदके लिये स्वीकार करनेका अधिकार प्रजाका है यह बात इस मंत्रभाग द्वारा सिद्ध होगई, अब इस सूक्तके इसी भावके पोषक मंत्रभाग यहां देखिये -

हे राजन् ! सर्वाः प्रदिशः (प्रजाः) त्वा ह्वयन्तु ।

(सू. ४, मं. १)

हविनः सजाताः त्वा अच्छ यन्तु । (सू. ४, मं.३)

बहुधा विरुपाः सर्वाः (प्रजाः) संगत्य ते वरीय अक्रन् ।

(सू. ४, मं. ७)

ताः संविदानाः सर्वाः (प्रजाः) त्वा ह्वयन्तु ।

(सू. ४, मं. ७)

'हे राजन् ! सब दिशाओंमें रहनेवाली सब प्रजा तुझे पुकारें । भेट लानेवाले स्वजातीय लोग तेरे संमुख आ जावे। बहुत करके विभिन्न रुपवाली सब प्रजा एकत्र सभा करके तुझे श्रेष्ठ बनावें । वह जाननेवाली सब प्रजा तुझे ही बुलावें । इत्यादि मंत्रभाग प्रजाकी अनुमति राजाके लिये अत्यंत आवश्यक है यही बात बता रहे हैं। इसलिये इस सूक्तका स्पष्ट आशय यही है कि प्रजाद्वारा स्वीकृत होकर ही राजा राजगद्दीपर आ जावे । किसी पुरुषको जन्मतः राजगद्दीका अधिकार नही हो सकता, परंतु जिसको प्रजा स्वीकृत करे वही राजपदके लिये योग्य हो सकता है । इस सूक्तके उपदेशमें यह महत्त्वपूर्ण बात पाठक अवश्य देखे और वैदिक धर्मके अनुकूल प्रजानियुक्त तथा प्रजासमंतही राजा है यह स्मरण रखें ।

प्रजाका पालन ।

राज्याभिषेकके समय ही प्रजाके चुने और पसंद किये राजाको राजगद्दीपर अभिषिक्त होनेके समय बताया जाता है कि अब तेरा प्रजापालनरूप कर्तव्य है । देखिये -

१. राष्ट्रं त्वा आगन्,
२ वर्चसा सह उदिहि,
३ विशां पतिः प्राङ् एकराट् त्वं विराज,
४ उपसद्यः नमस्यः च इह भव ॥(सू. ४, मं. १)

'हे राजन् ! (१) अब तेरे पास यह राष्ट्र आ गया है, (२) अपने प्रकाशके साथ उदयको प्राप्त हो, (३) प्रजाका पालक मुख्य एक राजा होकर तू विशेष प्रकाशमान हो, (४) तथा सब प्रजाओंको पास जाने योग्य और नमस्कार करने योग्य बन ।' इस प्रथम मंत्रमें 'प्रजा-पति' बन, यह आदेश है । पति शब्दका यद्यपि प्रसिद्ध अर्थ स्वामी या मालिक है तथापि यह शब्द 'पा' धातुसे बननेके कारण (पाति रक्षति) पालन करनेवालेका वाचक ही मुख्यतया यह शब्द है । जो पालन करता है वही पति कहलाने योग्य है, इसलिये प्रजापति (विशापतिः) ये शब्द प्रजापालन रूप राजाका कर्तव्य बताते है। राजा शब्द भी वस्तुतः अनियंत्रित राजाका वाचक नही है, प्रत्युत (रंजयति) प्रजाका रंजन करनेवाले उत्तम राजाका वाचक है । इस प्रकार यहां प्रजापालन रूप राजाका मुख्य कर्तव्य बताया है । ऐसे राजाको ही प्रजा प्रेमसे (नमस्यः, नमन करती है अर्थात् उसीका सत्कार करती है । राजा ऐसा हो कि जो आवश्यकता पडनेपर प्रजाको (उपसद्यः) मिल सके। जिसका दर्शन प्रजा कर सके ऐसा राजा हो । जो राजा सदा मंत्रियोंसे घिरा रहता है और त्रस्त प्रजाका दर्शन भी नही कर सकता वह प्रजासे नमस्कार कैसा प्राप्त कर सकता है ? इससे स्पष्ट हो सकता है कि प्रजाका नमस्कार प्राप्त करनेके लिये प्रजाको मिलना आवश्यक ही है ।

इस मंत्रके (राष्ट्रं त्वा आगन्) राष्ट्र तेरे पास आ गया है इस वाक्यसे स्पष्ट हो रहा है कि राष्ट्र अपनी संमतिसे तेरे समीप आया है, अर्थात् राष्ट्रके पांच प्रकारके प्रजाजनोंने राजगद्दीके लिये तुझे चुना है इसलिये उनकी निज संमतिसे ही यह राष्ट्र तुझे प्राप्त हुआ है, इस कारण तुझे उचित है कि तू राष्ट्रका पालन ऐसा कर कि सदा सर्वदा भविष्य कालमें राष्ट्रकी संमति तेरे अनुकूल ही रहे और कभी प्रतिकूल न बने। इस मंत्रका विचार करके पाठक जानें कि राजाको प्रजाकी अनुकूल संमतिकी कितनी आवश्यकता है। प्रजाकी अनुमतिके विना राजा राजगद्दीपर रह ही नहीं सकता, यह स्पष्ट आशय यहां प्रतीत होता है।

धनोंका विभाग ।

प्रजाओंमें धनका विषम विभाग हुआ तो अति धनी बने हुए लोग निर्धनोंपर बडा दबाव डालते है और उस कारण निर्धन लोग पीसे जाते है । इसलिये राजाके आवश्यक कर्तव्योंमेंसे एक यह कर्तव्य वेदने बताया है कि वह प्रजाओंमें योग्य प्रमाणसे वसुविभाग करे । धनकी विषमता प्रजामें न हो इस विषयमें वेदमें स्थान स्थानपर आदेश है -

१ राष्ट्रस्य वर्ष्मन् ककुदि श्रयस्व
ततः उग्रः (भूत्वा) नः वसूनि वि भज ॥
(सू. ४, मं. २)

२ अध मनः वसुदेवाय कृणुष्व
ततः उग्रः (भूत्वा) नः वसूनि वि भज ॥
(सू. ४, मं. ४)

'(१) राष्ट्रके ऐश्वर्यमय उच्च स्थानपर चढकर, उग्र बनकर हमारे लिये धनको विभक्त कर । (२) पश्चात् अपना मन धनके दानके लिये अनुकूल कर, उग्र बनकर हमारे लिये धनका विभाग करके बांट दे ।' इन दो मंत्रभागोंमें पहले कहा है कि 'हे राजन् ! तू सबसे पहले राष्ट्रके अत्यंत उच्च स्थानपर अर्थात् राजगद्दीपर आरूढ हो, पश्चात उग्र बन अर्थात् नरम दिलवाला, न बन और प्रजामें धनका विभाग कर । यद्यपि अनुमतिसेही राज गद्दीपर बैठता है तथापि उसको गद्दी पर बैठनेके पश्चात् उग्र बनना चाहिये ! यदि वह नरम दिलवाला बनेगा तो उससे राजाके कर्तव्य ठीक प्रकार निभाये जाना अशक्य है । धर्माधर्मका निर्णय करके अधर्माचरण करनेवालेको योग्य शासन करनेका कार्य उग्र बननेके विना नहीं हो सकता। इसलिये राजाको उग्र बनना अत्यंत आवश्यक है । उग्र बनकर और पक्षपात छोडकर अपना कर्तव्य राजाको करना चाहिये ।

धनविभाग ठीक प्रकार करनेके लिये राजाको न तो धनिकोंका पक्षपात करना योग्य है और ना ही निर्धनोंका पक्ष लेना चाहिये । राष्ट्रमें धन विषम प्रमाणमें न बंट जाय यह देखते हुए अपना वसुविभागका कर्तव्य पूर्ण करना चाहिये । यह बडा कठिन है, परंतु राज्यकी सुस्थितिके लिये अत्यंत आवश्यक है । धनकी विषमता, अधिकारकी विषमता, ज्ञानकी विषमता और जातीकी उच्चनीताकी विषमता आदि अनेक विषमताएं होती हैं, उनमें धन और अधिकारकी विषमता बडी घातक होती है, इस विषमताके कारण दबे हुए मनुष्य उठना कठिन हो जाता है और जो

दबी जातीकी भयानक स्थिति होती है वह सब जानते ही है । इसलिये वसुविभाग नामक राजाके कर्तव्यमें धनविषयक विषमता दूर करनेका उपदेश किया है । इसका महत्व पाठक समझे ।

शुभसंकल्प ।

प्रजाजनोंको शुभसंकल्पवाले बनाना भी राजाका एक मुख्य कर्तव्य है, इसका प्रारंभ राष्ट्रकी माताओं और राष्ट्रके सुपुत्रोंसे होना योग्य है इस विषयमें देखिये -

जायाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु । (सू. ४, मं. ३)

हे राजन ! तू अपने राज्यमें शिक्षाका प्रबंध ऐसा कर कि जिससे 'स्त्रियां और बालबच्चे उत्तम विचारवाले बनें ।' जिस राष्ट्रकी माताएं और बालबच्चे सब उत्तम विचारवाले बने हों उस राष्ट्रकी गणना स्वर्गमें ही हो सकती है । सुविचारवाली कन्याएं और शुभसंकल्पवाले कुमार राष्ट्रमें बढनेसे ही ब्रह्मचर्यका वायुमंडल बन सकता है, अन्यथा जो होना संभव है वह आजकल प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है । राष्ट्रमें विद्याके अधिकारी, शिक्षक तथा अन्य प्रबंधके शासनाधिकारी जिस समय उत्तम ब्रह्मचारी हो सकते है उस समय ही राष्ट्रकी सब कन्याएं और सब कुमार उत्तम संकल्पवाले हो सकते हैं । पाठक इस बातका खूब विचार करें । यह एक अपूर्व उपदेश वेदने यहां बताया है जो प्राचीन समय व्यवहारमें आया था, परन्तु अब वह फिर शीघ्र व्यवहारमें आवेगा ऐसा दिखाई नहीं देता । क्योंकि अवैदिक वायुमंडल बढ रहा है । इसलिये वैदिकधर्मी आर्योंको उचित है कि वे कुमारी और कुमारोंके अन्दर पवित्र विचारका वायुमंडल उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें और यह आदर्श अपने मनमें सदा जाग्रत रखें ।

राजाका रहना सहना ।

राजाका व्यवहार सीधासादा हो, राजा साधारण मनुष्य जैसा बनकर किसी किसी समय राष्ट्रमें भ्रमण भी करे और प्रत्यक्ष जनताका सुख-दुःख अवलोकन करे । इस विषयमें आदेश देखिये -

इन्द्रेन्द्र ! मनुष्याः (वत्) परेहि,
वरुणैः संविदानः सं अज्ञास्थाः ॥
स अयं त्वा स्वे सध्यस्थे अह्वत,
स उ देवान् यक्षत्: विशः कल्पयात् ॥ (सू. ४, मं. ६)

'हे राजन् । साधारण लोगोंके समान बनकर दूर दूरतक जनतामें भ्रमण कर, वहांके श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ मिलजुलकर उनकी सच्ची अवस्थाको जान । वे तुझे अपने घर बुलावें और यज्ञ करें, इस प्रकार प्रजाकी उन्नति कर ।'

यह मंत्र बहुत दृष्टियोंसे मननपूर्वक देखने योग्य है । सबसे पहिले इसमें यह कहा है कि राजा किसी किसी समय अपने दरबारी थाटको अलग करके स्वयं साधारण मनुष्योंके वेषमें होकर साधारण मनुष्योंके समान बनकर नगरोंमें भ्रमण करे और अपने आंखोसे देखे कि अपने प्रजाकी अवस्था कैसी है, क्या प्रजा किसी प्रकार कष्टमें है या सुखमें है । अपने कर्मचारी प्रजाके साथ कैसा व्यवहार करते है । वहांके जो (वरुणैः = वरैः) प्रमुख लोग हों जो विशेष समझदार हों उनसे मिलकर सब अवस्थाको जान लो कि किस बातमें सुधार करके प्रजाका सुख बढाना चाहिये । ऐसा स्वयं देखनेसे तुम्हे पता लग जायगा कि राज्यप्रबंधमें दोष कहां है और गुण कहां है ।

दूसरी बात इसी मंत्रमें जो कही है वह यह है कि प्रजाके लोग राजाको विशेष समय अपने घर बुलावें, राजा वहां जावे, उनके साथ मिलजुलकर बातचीत करे, सब मिलकर यज्ञ, याग आदि करें, इस रीतिसे राजा प्रजाकी समर्थ बनावे और प्रजाकी उन्नति करे ।

ये सभी उपदेश उत्तम है और जैसे राजाको वैसे ही राजपुरुषोंको भी सदा मनन करने योग्य है ।

दूतका संचार ।

राजा स्वयं अपने राज्यमें भ्रमण करे और सब व्यवस्था स्वयं अपने आंखसे देखे, इस विषयमें ऊपर कहा ही है, परंतु अकेला राजा कहांतक भ्रमण कर सकता है और कहांतक देख सकता है, राजा लोग दूतोंके आंखोंसे ही देख सकते है, इसलिये दूतोंका संचार करानेके विषयमें तृतीय मंत्रमें कहा है -

अजिरः दूतः संचरातै । (सू. ४, मं. ३)

'युवा दूत संचार करें ।' राष्ट्रमें दूतोंका संचार कराके राजा सब जानने योग्य बातें जान लेवे । और इस ज्ञानसे अपने शासन संबंधमें जो कुछ न्यूनाधिक करना हो वह करता रहे । अर्थात् दूत संचार यह शासनका एक आवश्यक अंग है क्योंकि इससे राजाको शासन विषयक प्रजाके सुख-दुःखोंका पता लगता है । इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करके अपना शासन चलानेवाला राजा प्रजाको अत्यंत प्रिय होता है, इसलिये प्रजा भी उस राजाका सत्कार विविध प्रकारकी भेंट देकर करती है । इस विषयमें देखिये -

(१) **हविनः सजाताः त्वा अच्छ यन्तु ॥** (सू. ४, मं. ३)
(२) **उग्रः बहुं बलिं प्रति पश्यासै ॥** (सू. ४, मं. ३)

(१) 'हवि लेकर स्वजातीके लोग तेरे सन्मुख उपस्थित हों। (२) उग्र बनकर बहुत भेंट तू देसेगा' । इत्यादि प्रकार प्रजासे बडा सत्कार राजा प्राप्त कर सकता है। तथा -

(१) ते द्यावापृथिवी शिवे स्ताम् (सू. ४, मं. ५)

(२) उग्रः सुमनाः इद दशर्मी वश । (सू. ४, मं. ७)

(१) 'हे राजन् ! तेरे लिये द्यावापृथिवी कल्याणपूर्ण हों, और (२) तू उग्र तथा उत्तम मनवाला बनकर यहां सौ वर्षतक राज्यको अपने वशमें कर ।' इसी प्रकार ' सब देवोंकी सहायता इस राजाको मिले' (मं. ४) इत्यादि प्रकारकी इच्छा लोग उसी समय करेंगे कि जिस समय राजा भी प्रजाका सुख बढानेमें दत्तचित्त होता हो । जो राजा प्रजाके सुखकी पर्वाह न करता हो उसके हिताहितकी फिक्र प्रजा भी नहीं करती । इसलिये हरएक राजाको सदा ध्यानमें यह बात रखना चाहिये कि 'मेरे पास जो राजपद आया है वह प्रजापालन करनेके लिये आया है, न कि अपने सुखभोग भोगनेके लिये ।' यह भाव मनमें रखता हुआ राजा अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे पालन करे।

वरुण ।

यहां एक वैदिक वर्णन शैलीकी विशेषता आ गई है वह अवश्य देखने योग्य है । इन्द्र, वरुण आदि शब्द देवतोंके वाचक ही होते है अन्य किसीके वाचक नही हो सकते । ऐसा सामान्य तथा साधारण लोग समझते है । परंतु ये शब्द कभी कभी विशेषण रुप होकर किसी अन्यके गुणबोधक होते है और कभी स्वयं किसी अन्य पदार्थके वाचक भी होते है। यहां वरुण शब्द बहुवचनमें आया है इसलिये यह वरुण देवता वाचक निःसंदेह नही है, क्योंकि जिस समय वरुण देवताका वाचक यह शब्द होता है उस समय यह सदा एकवचनमें ही होता है । यह बहुवचनमें होनेके कारण यह यहां प्रजाजनोंका वाचक है । 'वरुण, वरण, वर्ण' इस प्रकार यह 'चार वर्णोके लागों' का वाचक हो सकता है किंवा वर अर्थात् श्रेष्ठोंका भी वाचक हो सकता है । यहां हमारे मतसे 'वर्ण' अर्थ लेना अधिक योग्य है, तथापि इसका अधिक विचार पाठक करें ।

राजा और राजाके बनानेवाले ।

(५)

(ऋषिः - अथर्वा । देवता - सोमः)

अयमगन्पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥ १ ॥
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद्रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

अर्थ- (**अयं बली पर्णमणिः**) यह बलवान् पर्णमणि (**बलेन सपत्नान् प्रमृणन्**) बलसे शत्रुओंका नाश करता हुआ (**आ अगन्**) आया है । यह (**देवानां ओजः**) देवोंका बल और (**औषधीनां पयः**) औषधियोंका रस है । यह (**अप्रयावन् वर्चसा मा जिन्वतु**) विरोध न करता हुआ तेजसे मुझे संयुक्त करे ॥१॥

हे पर्णमणे! (**मयि क्षत्रं**) मुझमें क्षात्रबल और (**मयिं रयिं धारयतात्**) मुझमें धन धारण कर । (**अहं राष्ट्रस्य अभीवर्गे**) मैं राष्ट्रके आप्तपुरूषोंमें (**उत्तमः निजः भूयासं**) उत्तम निज बनकर रहूं ॥२॥

भावार्थ - यह पर्णमणि बल बढानेवाला, अपने बलसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, देवोंका शक्तिरूप और औषधियोंके रससे बननेवाला है, यह मुझे अपने तेजसे युक्त करे ॥१॥

इससे मुझमें क्षात्रतेज और ऐश्वर्य बढे और मैं राष्ट्रका हितसाधन करनेवाला, अर्थात् राष्ट्रका निजसंबंधी बनकर रहूंगा ॥२॥

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥ ३ ॥
सोमस्य पर्णः सहं उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ४ ॥
आ मारुक्षत्पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥ ५ ॥
ये धीवानो रथकाराः कर्मार ये मनीषिणः ।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान् ॥ ६ ॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान् ॥ ७ ॥

अर्थ - (यं गुह्यं प्रियं मणिं देवाः वनस्पतौ निदधुः) जिस गुह्य और प्रिय मणिको देवोंने वनस्पतिमें धारण किया था, (तं देवाः अस्मभ्यं आयुषा सह भर्तवे ददतु) उस मणिको देव हमें आयुके साथ पोषणके लिये देवें ॥३॥

(इन्द्रेण दत्तः) इन्द्रने दिया हुआ, (वरूणेन शिष्टः) वरूण द्वारा संस्कृत बना (सोमस्य पर्णः) सोम देवताका यह पर्णमणि (उग्रं सहः आ अगन्) उग्र बलसे युक्त होकर प्राप्त हुआ है । (तं) उस मणिके लिये (बहु रोचमानः) बहुत तेजस्वी मैं (दीर्घायुत्वाय शतशारदाय) दीर्घ आयुके लिये और सौ वर्षके जीवनके लिये (प्रियासं) प्रिय करूं ॥४॥

(पर्णमणिः मह्यै अरिष्टतातये) यह पर्णमणि बडे कल्याणके फैलानेके लिये (मा आ अरूक्षत्) मुझपर आरूढ हुआ है । (यथा अहं मर्यम्णः) जिससे मैं श्रेष्ठ मनवाले (उत संविदः) और ज्ञानीसे भी (उत्तरः असानि) अधिक श्रेष्ठ हो जाऊं ॥५॥

(ये धीवानः रथकाराः) जो बुद्धिवान् और जो रथ करनेवाले हैं तथा (ये मनीषिणः कर्माराः) जो बुद्धिवान् लुहारा है (पर्ण) पर्णमणे! (त्वं सर्वान् जनान् अभितः मह्यं उपस्तीन् कृणु) तू सब जनोंको मेरे चारों ओर उपस्थित कर ॥६॥

(ये राजानः राजकृतः) जो राजा और जो राजाओंको बनानेवाले है, (येसूताः ग्रामण्यः च) और जो सूत और ग्रामके नेता है, हे पर्णमणे ! तू सब जनोंको मेरे चारों और उपस्थित कर ॥७॥

भावार्थ - जिस मणिको देवोंने वनस्पतिसे बनाकर धारण किया था, उस मणिको देव हमें आयु और पुष्टिकी वृद्धिके लिये देवें ॥३॥

यह वनस्पतिसे बना हुआ, वरुणने सुसंस्कारयुक्त किया हुआ और इन्द्रने हमें पहले दिया हुआ, वीर्य और बलकी वृद्धि करनेवाला मणि है । उस मणिको मैं सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये प्रेमपूर्वक धारण करता हूं ॥४॥

यह मणि मेरे शरीरपर धारण करनेसे मेरा सुख बढावे और इससे मैं श्रेष्ठ मनवाले और ज्ञानी पुरूषसे भी अधिक श्रेष्ठ होऊंगा ॥५॥

जो बुद्धिमान् रथकार और कुशल लुहार है वे सब मेरे पास उपस्थित हों ॥६॥

जो सरदार और राजाका चुनाव करके राजाको बनानेवाले हैं और जो सूत और ग्रामके नेता हैं वे सब मेरे चारों ओर उपस्थित हों ॥७॥

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन त्वा मणे बध्नामि ॥ ८ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अर्थ - हे (**मणे**) पर्णमणे ! तू (**पर्णः तनूपानः असि**) पर्णरूप और शरीररक्षक है, (**मया वीरेण सयोनिः वीरः असि**) मुझ वीरके साथ समान उत्पत्तिवाला वीर है, इसलिये मैं (**त्वा संवत्सरस्य तेन तेजसा बध्नामि**) तुझको संवत्सरके उस तेजके साथ बांधता हूं ॥८॥

भावार्थ - यह मणि उत्तम शरीररक्षक है और वीरताका उत्साह बढानेवाला है, इसको मैं एक वर्षपर्यंत स्थिर रहनेवाला तेजके साथ धारण करता हूं ॥८॥

पर्ण मणि ।

इस सूक्तमें पर्णमणिके धारणकी उल्लेख है। अथर्ववेद काण्ड २ सू. ४ में जङ्गिड मणिका वर्णन है, उस प्रसंगमें मणिधारणके विषयमें जो लेख लिखा है वह पाठक यहां भी देखे । यह पर्णमणि इसलिये कहा जाता है कि यह औषधियोंके स्वरससे बनाया होता है , देखिये -

१ पर्णमणिः औषधीनां पयः। (सू. ५, मं.१)

२ पर्णः (पर्णमणिः) सोमस्य उग्र सहः ।
(सू. ५, मं. ४)

३ देवाः (पर्ण-) मणि वनस्पतौ निदधुः ।
(सू. ५, मं.३)

१ ' पर्णमणि औषधियोंका दूध ही है । (२) यह पर्णमणि सोमवल्लीका उग्र बल है । (३) देवोंने पर्णमणिको वनस्पतिमें रखा है ।' ये इसके वर्णन स्पष्टतासे बता रहे हैं कि यह मणि वनस्पतियोंके दूधसे बनाया जाता है । 'पर्ण - मणि' यह शब्द भी स्वयं अपना अर्थ व्यक्त कर रहा है कि यह (पर्ण) पत्तोंका मणि है अर्थात् वनस्पतिके पत्तोंके रससे बना है । इसके धारणसे वनस्पति - रसके वीर्यके कारण शरीरपर बडा प्रभाव होता है, इस विषयमें देखिये -

१ अयं पर्णमणिः बली । (सू. ५, मं.१)
२ पर्णः तनूपानः । (सू. ५, मं.८)
३ बलेन सपत्नान् प्रमृणन् । (सू. ५, मं.१)
४ देवानां ओजः ... मा वर्चसा जिन्वतु ।
(सू. ५, मं.१)
५ मयि क्षत्रं मयि रयिं धारयतात् । (सू.५, मं.२)
६ आयुषे भर्तवे च तं अस्मभ्यं ददतु । (सू. ५, मं.३)

७ पर्णः उग्र सहः ... दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
(सू.५,मं.५)

८ पर्णमणिः अरिष्टतातये मा आरूक्षत् ।
(सू. ५, मं.५)

(१) 'यह पर्णमणि बल बढानेवाला है, (२) यह (तनू - पानः) शरीरका रक्षक है,(३) यह अपने बलसे रोगरूपी शत्रुओंको नाश करता है, (४) यह (देवानां) इंद्रियोंका बल बढानेवाला है यह मेरा तेज बढावे, (५) यह मुझमें क्षात्रतेज और शरीरकी कान्ति बढावे,(६) दीर्घ आयुष्य और शरीरकी पुष्टि इससे बढे, (७) यह मणि बडा बल बढानेवाला है, इससे सौ वर्षकी दीर्घायु मुझे प्राप्त हो, (८) यह मणि शरीरपर धारण करनेपर मेरी शक्ति बढावे ।

इस प्रकारके वर्णन बता रहे हैं कि इन 'पर्णमणि' के अंदर बडा प्रभाव है और इसके शरीरपर धारण करनेसे शरीरमें नित्य उत्साह रहता है, बलके कार्य करनेके योग्य शरीरकी शक्ति होती है, शरीरका तेज बढता है और मनुष्य बडा तेजस्वी होनेके कारण प्रभावशाली दिखाई देता है । यह वनस्पतिके रसोंका प्रभाव है । वैद्य लोग इस मणिकी खोज करें ।

राष्ट्रका निज बनना ।

'राष्ट्रका निज' बनकर रहनेका उपदेश इस सूक्तमें विशेष मनन करने योग्य है । जो लोग राष्ट्रमें रहें वे निज बनकर रहेंगे तो ही राष्ट्रका भला हो सकता है, इस विषयमें द्वितीय मंत्र मनन करने योग्य है -

अहं राष्ट्रस्य अभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ।
(सू.५, मं.२)

'मैं इस राष्ट्रके हितचिंतक वर्गमें उत्तम निज बनकर रहूंगा ।' यहां राजा, राजपुरूष, अधिकारी वर्ग आदि सब

राष्ट्रके निज बनकर रहें यह उपदेश स्पष्ट है । राष्ट्रमें रहता हुआ कोई मनुष्य राष्ट्रके लिये पराया बनकर न रहे । यहां निज बनकर रहनेका भाव क्या है और पराया बनकर रहनेका भाव क्या है यह अवश्य देखना चाहिये । अपने यहांका ही उदाहरण लिजिये । इस भारतवर्षमें जापानी, चीनी, अमरिकन और योरोपीयन आते हैं और रहते भी है, परंतु इनमेंसे कोई भी 'भारतवर्षका निज' बनकर नहीं रहता । जो ये आते हैं वे 'उपरी' बनकर आते हैं, उपरी बनकर यहां रहते हैं, उपरी बनकर यहांका कारोबार करते हैं और पश्चात् चले जाते हैं । इस कारण इनके उपरी भावसे भारतवर्षका अहित ही होता है । इसलिये उपरी भावसे रहना राष्ट्रके लिये घातक है। जो 'निजभाव' से रहेंगे, राष्ट्रका जो हित और अहित है वह अपना हित और अहित है, इस दृष्टिसे व्यवहार करेंगे उनसे राष्ट्रका अहित नहीं होगा । यह तो साधारण मनुष्योंकी बात होगई है, परन्तु जो राष्ट्रके कर्मचारी है, यदि वे उपरी या पराये भावसे राष्ट्रमें रहने लगे, तो राष्ट्रका नुकसान कितना होगा इसका हिसाब लगाना कठीन है । इस दृष्टिसे पाठक देखे कि 'राष्ट्रका निज' बनकर रहनेका भाव कितना उच्च है और राष्ट्रहितकी दृष्टिसे कितना आवश्यक है । 'निजभाव' से रहनेके कारण विदेशी लोग भी स्वदेशीके समान राष्ट्रहित करनेवाले बनेंगे और 'निजभाव' न रखनेवाले स्वदेशी लोग भी परदेशी लोगोंके समान राष्ट्रहितका घात करनेवाले बनेंगे। यहां पाठक 'राष्ट्रका निज' बनकर रहनेका कितना महत्त्व है यह देखे और अपने राष्ट्रके निज बनकर रहें ।

राजाको निर्माण करनेवाले ।

इस सूक्तके सप्तम मंत्रमें 'राज - कृतः' शब्द है इसका अर्थ 'राजाको निर्माण करनेवाले (King makers)' है । राजाको किस रीतिसे निर्माण करते हैं यह प्रा यहां उत्पन्न हो सकता है । इसीकी उत्तर इसके पूर्वके चतुर्थ सूक्तने ही दिया है, राजाका चुनाव प्रजा द्वारा होता है और राजगद्दीपर आता है, इसीकी प्रजा द्वारा राजाका निर्वाचन, राजाका स्वीकार, राजाका नियोजन, अथवा राजाका चुनाव कहते हैं । जिसका चुनाव प्रजा करती है, उसका मानो 'निर्माण' ही प्रजा करती है । इस प्रकार राजाके पितृ या मातृस्थानमें प्रजा होती है, इसीलिये राजसभाके सदस्य राजाके 'पितर' हैं ऐसा वेदमें ही अन्यत्र कहा है (देखो अथर्व. कां. ५, सू. १२, मं. १-२) । प्रजाके जो महाजन नेता अथवा शिष्ट लोग होते हैं वे राजाका चुनाव करते हैं और उसको निर्माण करते हैं, इसीलिये प्रजाकी रक्षा करना राजाका परम श्रेष्ठ कर्तव्य है । मातृरक्षाके समान ही प्रजारक्षाका यह राजधर्म है ।

मंत्र ६ और ७ में कहा है कि रथकार, सुतार, लुहार, ज्ञानी पुरूष, मंत्री, सूत, ग्रामनेता, सरदार तथा राजाका चुनाव करनेवाले ये सब लोग राजाके पास रहें, राजाके अनुगामी बनें, राजाके साथ रहकर राजाको योग्य सलाह दें । इस प्रकार राज्यका शासन प्रजाके द्वारा नियुक्त किये राजपुरूषों द्वारा प्रजाके हितके लिये प्रजाकी अनुमतिसे चलाया जावे । इसीसे राष्ट्रका सच्चा हित हो सकता है ।

यद्यपि यह सूक्त वस्तुतः पर्णमणिका वर्णन करता है, तथापि प्रसंगसे राष्ट्रका निज बनकर रहना, राजाका चुनाव प्रजाद्वारा करना इत्यादि महत्त्वपूर्ण बातोंका उपदेश होनेके लिये वैदिक राजनीति शास्त्रकी दृष्टिसे यह सूक्त बडे महत्त्वपूर्ण आदेश दे रहा है । इसलिये पाठकभी इसी दृष्टिसे इस सूक्तका मनन करें ।

यहसंपूर्ण अनुवाक राजप्रकरणका ही उपदेश देता है।

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

• • •

वीर पुरूष ।

(६)

(ऋषिः - जगद्बीजं पुरूषः । देवता - वानस्पतिः, अश्वत्थः)

पुमान्पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ १ ॥
तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून्वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥
यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वाभिर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ३ ॥
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥ ४ ॥

अर्थ - जैसा (**स्वदिरात् अधि अश्वत्थः**) खैरके वृक्षके ऊपर अश्वत्थ वृक्ष होता है इसी प्रकार (**पुंसः पुमान् परिजातः**) वीर पुरूषसे वीर पुरूष उत्पन्न होता है । (**सः मामकान् शत्रून् हन्तु**) वह मेरे शत्रुओंका वध करे (**यान् अहं द्वेष्मि, ये च माम्**) जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ॥१॥

हे (**अश्व-त्थ**) अश्वके समान बलिष्ठ वीर ! (**तान् वैबाधदोधतः शत्रून्**) उन विविध बाधा करनेवाले दोही शत्रुओंको (**निः श्रृणीहि**) मार डाल और (**वृत्रघ्ना इन्द्रेण मित्रेण वरुणेन च मेदी**) वृत्रका नाश करनेवाले इन्द्र, मित्र और वरूणसे मित्रता कर ॥२॥

हे अश्वत्थ ! (**यथा महति अर्णवे निरभनः**) जैसे बडे समुद्रमें तू भदन करता है, (**एव**) उसी प्रकार (**तान् सर्वान् निर्भङ्ग्धि**) उन सबको छिन्न भिन्न कर (**यान् अहं द्वेष्मि ये च मां**) जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ॥३॥

हे अश्वत्थ ! (**यः सहभानः सासहानः**) जो तू शत्रुको दबानेवाला बलवान् (**ऋषभः इव**) बैलके समान होकर (**चरसि**) विचरता है , (**तेन त्वया वयं सपत्नान् सहिषीमहि**) उस तेरे साथ हम शत्रुओंको पराजित करेंगे ॥४॥

भावार्थ - खैरके वृक्षपर अश्वत्थ वृक्ष उगता है और उसीपर बढता है, इसी प्रकार वीर पुरुषसे वीर संतान उत्पन्न होती है और वीरोंके साथ ही बढती है । ऐसे वीर हमारे वैरियोंको हटा देवें ॥१॥

हे वीर ! तू शत्रुनाश करनेवाले वीरोंके साथ मिलकर विशेष बाधा करनेवाले शत्रुओंको मार डाल ॥२॥

हे शूर ! जिस प्रकार नौकासे बडे समुद्रके पार होते हैं उसी प्रकार तू उन सब शत्रुओंका भेदन करके पार हो ॥३॥

हे बलवान् ! जो तू बलिष्ठ होकर शत्रुको दबाते हुए सर्वत्र संचार करता है, उस तेरी सहायतासे हम अपने सब शत्रुओंको पराजित कर सकते हैं ॥४॥

सिनात्वेनान्निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥ ५ ॥
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन्कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग्भिन्द्धि सहस्व च ॥ ६ ॥
तेऽधराञ्चः प्र प्लवतां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥
प्रैणान्नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान्वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥ ८ ॥

अर्थ - हे अश्वत्थ ! (निर्ऋतिः मृत्योः अमोक्यैः पाशैः एनान् मामकान् शत्रून् सिनातु) आपत्ति मृत्युके न टूटनेवाले पाशोंसे इन मेरे शत्रुओंको बांध देवे जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ॥५॥

हे अश्वत्थ ! (यथा आरोहन् वानस्पत्यान् अधरान् कृणुषे) जैसा तू ऊपर रहता हुआ अन्य वृक्षोंको नीचे करता है, (एवा) इसी प्रकार (मे शत्रोः मूर्धानं विष्वक् भिन्धि) मेरे शत्रुओंके सिरको सब ओरसे तोड दे और (सहस्व च) उसको जीत लो ॥६॥

(बन्धनात् छिन्ना नौः इव) बन्धनसे छूटी हुई नोकाके समान (ते अधराञ्चः प्र प्लवतां) वे अधोगतिके मार्गसे बहते चले जावे (वैबाधप्रणुत्तानां पुनः निवर्तनं न अस्ति) विशेष बाधा करनेवालोंका पुनः लौटना नहीं होता है ॥७॥

(एनान् मनसा प्र नुदे) इन शत्रुओंको मनसे मैं हटाता हूं। (चित्तेन उत ब्रह्मणा प्र) मैं चित्तसे और ज्ञानसे हटाता हूं। (अश्वत्थस्य वृक्षस्य शाखया) अश्वत्थ वृक्षकी शाखासे (एनान् प्र नुदामहे) इनको हम हटा देते हैं ॥८॥

भावार्थ - हे शक्तिमान् ! मेरे वैरी आपत्तियोंके पाशोंसे बांधे जावें अर्थात् वे आपत्तियोंमें पडें ॥५॥

जिस प्रकार पीपलका वृक्ष अन्य वृक्षोंपर उगता है और उनको नीचे दबाता है उसी प्रकार वीर मेरे शत्रुओंको नीचे दबा देवे और उनके सिर तोड देवे ॥६॥

विशेष बाधा करनेवाले शत्रु अधोगतिसे नीचेकी ओर गिरते जायंगे। ऐसे एक बार गिरे हुए फिर कभी उठते नहीं ॥७॥

मनसे, चित्तसे और अपने ज्ञानसे मैं शत्रुओंको दूर करता हूं ॥८॥

अश्वत्थकी अन्योक्ति ।

यह सूक्त अश्वत्थकी अन्योक्ति है। अन्योक्ति अलंकार पाठक जानते ही है। एकका प्रत्यक्ष उल्लेख करके दूसरेके ही विषयमें कहनेका नाम अन्योक्ति है। इसी प्रकार यहां अश्वत्थ वृक्षका वर्णन करते हुए वीर पुरूषका वर्णन किया है। इसलिये यह अश्वत्थान्योक्ति है।

अश्वत्थ शब्दके बहुत अर्थ है - (१) पीपल वृक्ष, (२) (अश्व-त्थः) अश्वके समान बलवान् बनकर रहनेवाला वीर, (३) (अ - श्व - त्थ) जो कल रहेगा ऐसा निश्चय नहीं कहा जाता, नश्वर, (४) सूर्य (५) अश्विनी नक्षत्र इत्यादि अनेक अर्थ इस शब्दके हैं। यहां पहले दो अपेक्षित है।

अश्वत्थ अर्थात् पीपल वृक्ष दूसरे वृक्षोंपर उगा हुआ दिखाई देता है -

यथा अश्वत्थ वानस्पत्यान् आरोहन् अधरान् कृणुषे । (सू.६, मं.६)

इस दृश्यपर काव्य दृष्टिसे यह अलंकार हो सकता है कि यह अश्वत्थ वृक्ष बडा भारी वीर है जो अन्य वृक्षोंको अपने पांवके नीचे दबाता है और अन्य वृक्षोंके सिरपर अपना पांव रखकर खडा हो जाता है। जिस प्रकार वीर पुरूष शत्रुके सिरको अपने पांवके नीचे दबाता है उसी

प्रकार मानों पीपलका यह कृत्य है । इसलिये अश्वत्थ वृक्षकी अन्योक्तिसे इस सूक्तमें शूर पुरूषका वर्णन किया है । पाठक इस दृष्टिसे यह सूक्त पढें ।

आनुवंशिक संस्कार ।

इस सूक्तके प्रथम ही मंत्रमें कहा है कि 'पुसः पुमान् परिजातः' वीरसे वीर संतान उत्पन्न होती है, वीरके कुलमें वीर उत्पन्न होते हैं । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य कुलमें वीर उत्पन्न नहीं हो सकते, परंतु यह वीर संतान उत्पन्न होनेके योग्य वायुमंडल कहा रहता है यही दिखाया है । बचपनसे वीरताकी बाते श्रवण करनेके कारण वीरके संतान वीरतासे युक्त होना अत्यंत स्वाभाविक है, यही यहा कहनेका तात्पर्य है ।

यह वीर सब प्रकारके शत्रुओंको हटा देवे, यही सब मंत्रोंमें कहा है और मंत्रोंका यह आशय सरल होनेसे इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

शत्रुका लक्षण ।

इस सूक्तमें 'वै - बाध' (विशेष बाधा करना) यही एक वैरी होनेका लक्षण कहा है (मं. २,७) । वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, राजकीय आदि अनेक प्रकारके शत्रु हो सकते हैं और इन केन्द्रोंमें ये शत्रु विशेष प्रकारकी बाधा भी करते हैं । यह अनुभव पाठकोंको है ही । ये सब शत्रु दूर करने चाहिये और जनताका सुख बढाना चाहिये। यह इस सूक्तके उपदेशका सार है । शत्रुको दूर करनेका उपाय इस प्रकार करना चाहिये -

मनसा, चित्तेन उत ब्रह्मणा एनान् प्र नुदे ।

(सू.६, मं.८)

'मन, चित्त और ज्ञानसे शत्रुओंको दूर करनेके उपाय सोचने चाहिये ' और उन उपायोंका मनन करना चाहिये । मनसे शत्रुनाश करनेका मनन करना चाहिये, चित्तसे इसी बातका चिंतन करना चाहिये, और अपना ज्ञान बढाकर उस ज्ञानसे ऐंसी योजनाएं करना चाहिये कि जिससे शत्रु शीघ्र ही नष्ट हो जावे । तात्पर्य हरएक प्रकारकी युक्ति करके शत्रुको हटाना चाहिये ।

गिरावटका मार्ग ।

जो विशेष बाधा करते हैं, जो जनताको सताते हैं, जो लोगोंको उपद्रव देते हैं वे स्वकर्मसे ही गिरते हैं । उनके बुरे कर्मके कारण वे स्वयं अधोगतिके मार्गसे गिरते रहते हैं, इस विषयमें सप्तम मंत्रका कथन हरएक मनुष्यके लिये मनन करने योग्य है -

बन्धनात् छिन्ना नौः इव, ते अधराञ्चः प्र प्लवताम् । वैबाधप्रणुत्तानां पुनः निवर्तनं नास्ति ॥

(सू. ६, मं.७)

'बंधनसे नौका जैसी छूटती है और जलप्रवाहसे बहती जाती है उस प्रकार वे जनताको विशेष कष्ट देनेवाले दुष्ट लोग अधोगतिसे नीचेकी और गिरते जाते हैं । उनके उठनेकी कोई आशा नही है। जो दुष्ट जनताको विशेष बाधा करते हैं और उस कारण पतित होते जाते हैं, उनके ऊपर उठनेकी कोई आशा नहीं है ।'

इस मंत्रने पाठकोंको सावधान किया है कि वे अपने चरित्रका अवलोकन करें और सोचे कि अपनी ओरसे तो किसीको कष्ट नहीं होते है ? क्योंकि जो दूसरोंको कष्ट देते हैं उनकी उन्नतिकी कोई आशा नहीं है । एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको कष्ट देगा, एक जाती दूसरी जातीको कष्ट देगी, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको सतायेगा, तो वह सतानेवाले अन्य रीतिसे गिरते जाते है और उनके उठनेकी कोई आशा नहीं होती है । जो राष्ट्र दूसरे देशोंको परतंत्रतामें रखते हैं वे इसी प्रकार गिरते जाते हैं । साम्राज्यपदके कारण भी इस प्रकार गिरावट होती जाती है । यदि किसीको दबाकर एक स्थानपर रखना हो तो जैसा दबे हुएको वहां दबकर रहना पडता है, उसी प्रकार दबाने वालेको भी वहां ही रहना पडता है । इसी प्रकार अन्य बातें पाठक जान सकते हैं । तात्पर्य यह है कि कोई भी जाती जो दूसरोंपर अत्याचार करती है, स्वयं अधोगतिके मार्गसे गिरती जाती है और जबतक वह अपना अत्याचार बंद नहीं करती, तबतक उसके उठनेका कोई मार्ग नहीं होता है । यह जानकर कोई किसी दूसरेपर कभी अत्याचार न करे । दूसरेपर अत्याचार न करनेसे ही उन्नतिका मार्ग खुला रह सकता है ।

विजयकी तैयारी ।

इस सूक्तमें 'सहमान सासहान' (मं.४) ये दो शब्द हैं, अन्य स्थानोंमें 'सहमान, असह्य' ये शब्द है, जो विजयकी तैयारीके सूचक है -

१ **सहमान** - शत्रुके हमले होनेपर जो अपना स्थान नहीं छोडता ।

२ **असह्य, सासहान** - इसके हमले शत्रुपर होनेपर शत्रु इसके संमुख ठहर नहीं सकता ।

विजय प्राप्त करना हो तो अपनी तैयारी ऐसी करनी चाहिये । तभी विजय होगा ।

पाठक इस सूक्तका इस दृष्टिसे विचार करें । और शत्रुको दूर भगानेके विषयमें योग्य बोध प्राप्त करें ।

आनुवंशिक रोगोंका दूर करना ।

(७)

(ऋषिः - भृग्वङ्गिराः । देवता - हरिणः, तारके, आपः, यक्ष्मनाशनम्)

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥ १ ॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥ २ ॥
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥
अभू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ ॥
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥ ५ ॥

अर्थ - (**रघुष्यदः हरिणस्य शीर्षणि अधि**) वेगवान् हरिणके सिरके अंदर (**भेषजं**) औषध है । (**सः विषाणया**) वह सींगसे (**क्षेत्रियं विषूचीनं अनीनशत्**) क्षेत्रिय रोगको सब प्रकारसे नष्ट कर देता है ॥१॥

(**वृषा हरिणः चतुर्भिः पद्भिः**) बलवान् हरिण चारों पांवोंसे (**त्वा अनु अक्रमीत्**) तेरे अनुकूल आक्रमण करता है। हे (**विषाणे**) सींग ! तू (**यत् अस्य हृदि गुष्पितं क्षेत्रियं**) जो इसके हृदयमें गुप्त क्षेत्रिय रोग है उसको (**वि ष्य**) नाश कर दे ॥२॥

(**अदः यत्**) वह जो (**चतुष्पक्षं छदिः इव**) चार पक्षवाले छतके समान (**अवरोचते**) चमकता है (**तेन ते अङ्गेभ्यः**) उससे तेरे अंगोंसे (**सर्वं क्षेत्रियं नाशयामसि**) सब क्षेत्रिय रोगको हम नाश करते हैं ॥३॥

(**अभू ये दिवि**) वे जो आकाशमें (**सुभगे विचृतौ नाम तारके**) उत्तम प्रकाशमान् दो सतारे हैं - वनस्पतियां हैं। (**क्षेत्रियस्य अधमं उत्तमं पाशं वि मुञ्चतां**) क्षेत्रिय रोगके नीचे और ऊंचे पाशको छुडा देवें ॥४॥

(**आपः इत् वै उ भेषजीः**) जल निःसन्देह औषध है, (**आपः अभीवचातनीः**) जल रोगनाशक है (**आपः विश्वस्य भेषजीः**) जल सब रोगोंकी दवा है । (**ताः त्वा क्षेत्रियात् मुञ्चन्तु**) वह जल तुझे क्षेत्रिय रोगसे छुडा देवे ॥५॥

भावार्थ - वेगसे दौंडनेवाले हरिणके सींगमें उत्तम औषध है उस सींगसे क्षेत्रिय रोग दूर होते हैं ॥१॥

बलवान् हरिणके सींगसे हृदयमें गुप्त अवस्थासे रहा हुआ क्षेत्रिय रोग दूर हो जाता है ॥२॥

यह चार पंखवाले छतके समान हरिणका सींग चमकता है उससे सब अंगोंमें रहनेवाले क्षेत्रिय रोगका नाश होता है ॥३॥

ये जो प्रकाशमान् सतारोंके समान तारका नामक दो औषधियां है उनसे वंशके रोग दूर होते हैं ॥४॥

जल उत्तम औषधि है, उससे सब रोग दूर होते है, सब रोगोंके लिये यह एक औषध है उससे क्षेत्रिय रोग दूर होता है ॥५॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ७ ॥

अर्थ - **(यत् क्रियमाणायाः आसुतेः)** यदि बिगडनेवाले रससे **(क्षेत्रियं त्वा व्यानशे)** क्षेत्रियरोग तेरे अन्दर व्यापा है । तो **(तस्य भेषजं अहं वेद)** उसका औषध मैं जानता हूं और उससे मैं **(त्वत् क्षेत्रियं नाशयामि)** तुझसे क्षेत्रिय रोगको नाश करता हूं ॥६॥

(नक्षत्राणां अपवासे) नक्षत्रोंके छिपनेपर **(उत उषसां अपवासे)** उषाके चले जानेपर **(सर्वे दुर्भूतं अस्मत् अप)** सब अनिष्ट हम सबसे दूर होवे तथा **(क्षेत्रियं अप उच्छतु)** क्षेत्रिय रोग भी हट जावे ॥७॥

भावार्थ - यदि बिगडे जलके निमित्तसे तेरे अन्दर क्षेत्रिय रोग प्रकट हुआ है तो उसके लिये औषध मैं जानता हूं और उससे रोग भी दूर करता हूं ॥६॥

नक्षत्र छिपनेपर और उषा चली जाते ही सब रोगबीज हम सबसे दूर होवे और हमारा क्षेत्रिय रोग भी दूर होवे ॥७॥

मातापितासे संतानमें आये क्षेत्रिय रोग ।

जो रोग मातापितासे संतानमें आते हैं उनको क्षेत्रिय रोग कहते हैं । ये क्षेत्रिय रोग दूर होना कठिन होता है। इनकी चिकित्सा इस सूक्तमें कही है ।

हरिणके सींगसे चिकित्सा ।

जो कृष्ण मृग होता है, जिसके सींग बडे भारी होते हैं, उन सींगोंमें क्षेत्रिय रोग दूर करनेका गुण होता है । 'हरिणके सिरमें औषध है जो सींगमें आता है जिसके कारण क्षेत्रिय रोग दूर होते हैं । (मं.१)' हरिणके सींगके विषयमें वैद्यकग्रंथका -

मृगशृङ्गं भस्महृद्रोगे त्रिकशूलादौ शस्तम् ।

- वैद्यक शब्दसिंधु।

'मृगका सींग भस्मरोग, हृदयरोग और त्रिक शूलादि रोगोंके लिये प्रशस्त है।' यह कथन इस सूक्तके कथनके साथ संगत होता है ।

हृदय रोग ।

इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें **'हृदि गुप्तिं क्षेत्रियं'** (मं.२) हृदयमें रहनेवाला गुप्त क्षेत्रिय रोग, यह प्रायः हृदयरोग ही होगा । तृतीय मंत्रमें **'अंगेभ्यः क्षेत्रियं'** (मं.३) सब अंगोंसे क्षेत्रिय रोग दूर करनेकी बात कही है । प्रथम मंत्रमें सामान्य क्षेत्रिय रोगका वर्णन है । ये सब रोग हरिणके सींगसे दूर होते हैं । हरिणका सींग चंदनके समान पत्थरपर जलमें घिसकर सिरपर लगाया जाता है अथवा थोडा थोडा अल्प प्रमाणमें पेटमें भी लेते हैं ।इस प्रांतमें छोटे बालकोंको उक्त प्रकार किंचित् जलमें घोलकर पिलाते भी है और माताएं कहती हैं कि इससे संतानोंको आरोग्य होता है । सिरमें गर्मी चढनेपर सिरपर लगानेसे गर्मी दूर होती है । मस्तिष्क पागल होनेकी अवस्थामें यह उत्तम औषध है ।

औषधि चिकित्सा ।

चतुर्थ मंत्रमें 'सुभगा और तारका' ये दो शब्द है । इसी प्रकारका मंत्र काण्ड २, सू.८ में आया है, देखिये -

भगवती और तारका ।

भग - वती विचृतौ नाम तारके ॥

(कां. २, सू.८,मं.१)

इसके साथ इस सूक्तका मंत्र भी देखिये -

सु - भगे विचृतौ नाम तारके ॥ (कां.३, सू.७, मं.४)

इसमें विधानकी समता है । इसलिये द्वितीय कांडके अष्टम सूक्तके प्रसंगमें 'भगवती और तारका' वनस्पतियोंके विषयमें जो लिखा है, वही यहां पाठक समझें । सुभगा और भगवती ये दो शब्द एक ही वनस्पतिके वाचक होंगे। और तारका शब्द दूसरी वनस्पतिका वाचक होगा। ये दो वनस्पतियां क्षेत्रियरोगको दूर करती है ।

इनसे किसका बोध लेना है इस विषयमें कां. २, सू.८, मं.१ का विवरण देखिये।

द्युलोक और भूलोकमें समान औषधियां ।

वनस्पतियोंके साथ द्युलोकका संबंध बताया है । सोम द्युलोकमें है और पृथ्वीपर भी वनस्पतिरूप है । इसी प्रकार 'सुभगा (भगवती) और तारका' ये दो औषधियां भी वनस्पतिरूपसे पृथ्वीपर हैं और तेजरूपसे द्युलोकमें है । यह वर्णन वनस्पतिका प्रशंसापरक प्रतीत होता है ।

जलचिकित्सा ।

क्षेत्रिय रोग दूर करनेके लिये जलचिकित्सा करनेका उपदेश इस सूक्तके पंचम मंत्रमें है । इस मंत्रमें कहा है कि 'जल सब रोगोंकी एक दवा है इसलिये क्षेत्रिय रोग भी इससे दूर हो सकते हैं ।' जलके आरोग्यवर्धक गुणके विषयमें कां.१, सू.४-६ ये तीन सूक्त देखिये ।

षष्ठ मंत्रका आशय यह है कि यदि रोग अथवा क्षेत्रिय रोग बिगडे स्नान या पानसे हुए हों, तो पूर्वोक्त प्रकार दूर हो सकते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त पांच मंत्रोंमें कहे उपाय ही सब रोग दूर करनेके लिये पर्याप्त हैं ।

उक्त उपायोंसे अति थोडे समयमें रोग दूर हो सकते हैं । यदि रोगका प्रारंभ आज हुआ है तो रात्रीके तारागण छिप जानेके समय तथा उषःकाल दूर होकर दिनका प्रकाश शुरू होते ही ये सब रोग दूर होते हैं । यदि यह वर्णन काव्यपरक माना जाय तो उसका अर्थ इतना ही होगा कि 'अतिशीघ्र रोग दूर होंगे ।'

•••

राष्ट्रीय एकता ।

(८)

(ऋषिः- अथर्वा । देवता - मित्रः, विश्वेदेवाः, नानादेवता)

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन्पृथिवीमुस्रियाभिः ।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥ १ ॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥ २ ॥

अर्थ - **(उस्रियाभिः पृथिवीं संवेशयन्)** किरणोंसे पृथ्वीको संयुक्त करता हुआ **(ऋतुभिः कल्पमानः मित्रः)** ऋतुओंके साथ समर्थ होता हुआ **(मित्रः)** मित्र **(आयातु)** आवे **(अथ)** और **(वरूणः वायुः अग्निः)** वरूण, वायु और अग्नि **(अस्मभ्यं संवेश्यं बृहत् राष्ट्रं)** हम सबके लिये उत्तम प्रकार रहने योग्य बडे राष्ट्रको **(दधातु)** धारण करें ॥१॥

(धाता रातिः सविता) धारण कर्ता, दाता सविता **(मे इदं वचः)** मेरा यह वचन **(जुषन्तां)** प्रीतिसे सुनें और **(इन्द्रः त्वष्टा)** इन्द्र और त्वष्टा कारीगर **(मे इदं वचः प्रति हर्यन्तु)** मेरा यह वचन स्वीकार करें । **(शूरपुत्रां देवीं अदितिं हुवे)** शूरपुत्रोंवाली अदीन देवी माताको मैं बुलाता हूं **(यथा सजातानां मध्यमें - स्थाः असानि)** जिससे मैं स्वजातियोंमें मध्य - प्रमुख स्थानपर रहनेवाला होऊं ॥२॥

भावार्थ - अपने किरणोंसे पृथ्वीको प्रकाशित करनेवाला और ऋतुओंके साथ सामर्थ्य बढानेवाला सूर्य, वरूण, वायु और अग्नि ये सब देव हमें ऐसा बडा विशाल राष्ट्र देवे कि जो हमारे रहने योग्य हो ॥१॥

सबका धारणकर्ता, दाता सविता और इन्द्र तथा त्वष्टा ये मेरा वचन सुनें और मानें, तथा मै शूर पुत्रोंकी माता देवी अदितिको भी कहता हूं कि इन सबका ऐसा सहाय्य मुझे प्राप्त हो कि जिससे मै स्वजातियोंमें विशेष प्रमुख स्थानपर विराजमान होनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूं ॥२॥

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद्दीर्घमेव संजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥ ३ ॥
इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥ ४ ॥
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥ ५ ॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ ६ ॥

अर्थ - (**अहं सोमं सवितारं विश्वान् आदित्यान्**) मैं सोम, सविता और सब आदित्योंको (**उत्तरत्वे**) अधिक श्रेष्ठताकी प्राप्तिके लिये (**नमोभिः हुवे**) अनेक सत्कारोंके साथ बुलाता हूं । (**अ - प्रति - ब्रुवद्भिः सजातैः इद्धः**) विरूध्द भाषण न करनेवाले स्वजातियोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ (**अयं अग्निः**) यह अग्नि (**दीर्घ एव दीदयत्**) बहुत कालतक प्रकाशित रहे ॥३॥

(**इह इत् असाथ**) यहां ही रहो, (**परः न गमाथ**) दूर मत जाओ । (**इर्यः गोपाः**) अन्नयुक्त गौका पालन करनेवाला (**पुष्टिपतिः वः आजत्**) पोषण करता हुआ तुमको यहां लावे । (**विश्वे देवाः**) सब देव (**अस्मै कामाय**) इस कामनाकी पूर्तिकी (**कामिनीः वः**) इच्छा करनेवाली तुम प्रजाओंको (**उप उप संयन्तु**) एकताके विचारसे संयुक्त करें ॥४॥

(**वः मनांसि सं**) तुम्हारे मनोंको एक भावसे युक्त करो, (**व्रता सं**) तुम्हारे कर्मोंको एक भावसे युक्त करो (**आकूतिः सं नमामसि**) संकल्पोंको एक भावसे झुकाते हैं । (**अमी ये विव्रताः स्थन**) यह जो तुम परस्पर विरूद्ध कर्म करनेवाले हो (**तान् वः सं नमयामसि**) उन सब तुमको एक विचारमें हम झुकाते हैं ॥५॥

(**अहं मनसा मनांसि गृभ्णामि**) मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको लेता हूं । (**मम चित्तं चित्तेभिः अनु आइत**) मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोको बनाकर आओ । (**मम वशेषु वः हृदयानि कृणोमि**) मेरे वशमें तुम्हारे हृदयोंको मैं करता हूं । (**मम यातं अनुवर्त्मानः आ इत**) मेरे चालचलनके अनुकूल चलनेवाले होकर यहां आओ ॥६॥

भावार्थ - मैं नमन पूर्वक सोम, सविता तथा सब आदित्योंको बुलाता हूं कि वे मुझे ऐसी सहायता दें कि मैं अधिक श्रेष्ठ योग्यताके योग्य होऊं । परस्पर विरोध न करनेवाले स्वजातीय लोगोंके द्वारा जो यह एक राष्ट्रीयताका अग्नि प्रदीप्त किया गया है वह बहुत देरतक हमारे लोगोमें जलता रहे ॥३॥

तुम सब यहां एक विचारसे रहो, परस्पर विरोध करके एक दूसरेसे दूर न हो जाओ । अन्न अपने पास रखनेवाला कृषक और गौओंका पालन करनेवाला, तुम्हारी पुष्टि करनेवाला वैश्य तुमको इकट्ठा करके यहां लावे । एक इच्छाकी पूर्तिके लिये प्रयत्न करनेवाली सब प्रजाओंको सब देव एकताके विचारसे संयुक्त करें ॥४॥

तुम्हारे मन एक करो, तुम्हारे कर्म एकताके लिये हों, तुम्हारे सङ्कल्प एक हों जिससे तुम सङ्गशक्तिसे युक्त हो जाओगे । जो ये आपसमें विरोध करनेवाले हैं उन सबको हम एक विचारसे एकत्र झुका देते हैं ॥५॥

सबसे प्रथम मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको आकर्षित करता हूं । मेरे चित्तके अनुकूल तुम अपने चित्तोंको बनाकर यहां आओ । मैं अपने वशमें तुम्हारे हृदयोंको करता हूं । मैं जिस मार्गसे जाता हूं उस मार्गपर चलते हुए तुम मेरे पीछे पीछे चले आओ ॥६॥

अधिक उच्चता ।

मनुष्यके अंदर अधिक उच्चताकी प्राप्ति करनेकी इच्छा स्वभावतः रहती है । कोई भी मनुष्य मनसे यह नहीं चाहता कि अपनी उन्नति न हो । हरएक मनुष्य जन्मतः उन्नति ही चाहता है । इस विषयमें तृतीय मंत्रका कथन विचारणीय है -

हुवे सोमं सवितारं नमोभिः
विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्त्वे ॥ (सू. ८, मं.३)

'सोम, सविता और सब आदित्योंको उच्च होनेकी स्पर्धामें सहायताके लिये बुलाता हूं।' अर्थात् मैं देवताओंसे ऐसी सहायता चाहता हूं कि जिससे मैं दिव्य मार्गसे उन्नतिको प्राप्त कर सकूं ।

'उत्, उत्तर' ये शब्द एकसे एक बढकर अवस्थाके द्योतक हैं । साधारण अवस्थासे 'उत्' अवस्था बढकर और उससे 'उत्तर' अवस्था अधिक श्रेष्ठ होती है । मनुष्य सदा 'उत्तरत्व' की प्राप्तिका प्रयत्न करे यह तृतीय मंत्रकी सूचना है । अर्थात् मनुष्य अपनेसे उच्च अवस्थामें चढनेका यत्न तो अवश्य ही करे परंतु उससे भी एक सीढी ऊपर होनेका ध्येय अपने सन्मुख रखे । 'उत् - तर - त्व' शब्दमें यह सब अर्थ है जो पाठकोंको अवश्य देखना चाहिये।

यह अधिक उच्च अवस्था देवमार्गसे ही प्राप्त करना चाहिये। 'श्रेय और प्रेय' अथवा 'दैव और असुर' ऐसे मार्ग मनुष्यके सन्मुख आते हैं, उनमेंसे श्रेय अर्थात् दैव मार्गका अवलंबन करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है और दूसरे मार्गपरसे चलनेसे मनुष्यकी हानि हो जाती है । आसुर मार्गको दूर करनेके लिये और श्रेय मार्गपर जानेकी प्रेरणा करनेके लिये ही इस मंत्रमें 'देवताओंकी नम्रतापूर्वक प्रार्थना' करनेकी सूचना दी है । देवताओंकी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करनेवाला मनुष्य सहसा निकृष्ट मार्गपर अपना पांव नही रख सकता । देवताओंकी सहायताकी प्रार्थना इस प्रकार मनुष्यत्वके विकासका हेतु है । एक वार इस दैवी मार्गपर अपना पांव रखनेके बाद भी कई मनुष्य आसूरी लालसाओंमें फंस जाते हैं। इस प्रकारकी गिरावटसे बचानेके हेतु चतुर्थ मंत्र कहता है कि -

इह इत् असाथ, न परो गमाथ । (सू. ८, मं.४)

'इसी दैवी मार्गपर रहो, इसको छोडकर अन्य मार्गसे न जाओ।' यह सावधानीकी सूचना विशेष ध्यान देने योग्य है । कई वार ऐसा देखा गया है कि मनुष्य आत्मोन्नतिके पथसे उन्नत होता चला जाता है और फिर एकदम गिरता है । ऐसा न होवे इस लिये इस चतुर्थ मंत्रने यह सूचना दी है । यदि पाठक इस सूचनाको ध्यानमें धारण करेंगे तो निःसंदेह इससे उनका बचाव हो सकता है ।

उन्नतिका मार्ग ।

मनुष्यकी उन्नतिके लिये, मनुष्य सामाजिक प्राणी होनेके कारण, उसको सांधिक जीवनमें रहना आवश्यक है। यह अलग अलग रहकर उन्नत हो नहीं सकता । वैयक्तिक जीवनके लिये इतने स्वार्थत्यागकी आवश्यकता नहीं है जितनी कि सामुदायिक जीवनके लिये आवश्यकता है । इस कारण सामुदायिक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्योंके लिये उचित है कि वे अपना व्यवहार ऐसा करे कि जिससे समाजमें परस्पर विरोध पैदा न हो, इस विषयमें पंचम मंत्रका उपदेश देखिये -

वः मनांसि सं. वः व्रतानि सं, वः आकूतीः सम् ।
(सू.८, मं.५)

'तुम्हारे मन, तुम्हारे कर्म और तुम्हारे संकल्प सम्यक् रीतिसे एकताको बढानेवाले हों ।' इस मंत्रमें जो 'सं' उपसर्ग है वह 'उत्तमता और एकता' का द्योतक है । मनुष्योंके संकल्प, उनके मानसिक विचार और सब प्रकारके कर्म ऐसे हो कि जो एकताकी तथा उत्तमताकी वृद्धि करनेवाले हों । कई लोग बाहरसे कोई बुरा कार्य करेंगे नहीं, परन्तु मनसे ऐसे बुरे विचार और बुरे संकल्प करेंगे, कि जिनका परिणाम आपसमें फिसाद मचानेका हेतु बने । ऐसा नहीं होना चाहिये संकल्प , विचार और कर्म सभी सदा शुभ होने चाहिये और कभी वैरका भाव उसमें नहीं आना चाहिये । यदि अपने समाजमें कोई इसके विरूद्ध बर्ताव करनेवाला हो तो उसको भी समझाकर सन्मार्गपर लाना चाहिये, इस विषयमें पञ्चम मन्त्रका उत्तरार्ध देखने योग्य है -

अमी ये विव्रता स्थन तान्वः स नमयामसि ॥
(सू.८, मं.५)

'ये जो विरूद्ध आचरण करनेवाले हैं उनको भी एकताके मार्गपर हम झुका देते हैं ।' इस प्रकार विरोधी लोगोंको भी समझाकर एकताके मार्गपर लाना चाहिये। समाजके शासनका ऐसा प्रबंध होना चाहिये कि जिसमें रहनेवाले लोग विरूद्ध मार्गपर चल ही न सकें । सज्जन तो सदा शुभ मार्गपरसे चलेंगे ही परन्तु दुर्जन भी विरोधके मार्गपर जाना छोड दें और शुभ मार्गपर चलनेमें ही अपना लाभ है इस बातको अच्छी प्रकार समझ जांय । इस प्रकार सब जनताको एकताके मार्गपर लानेसे और समाजसे दुर्वर्तन करनेवाले मनुष्योंको दूर कर देनेसे

अथवा उनकी सुधारनेसे जनताकी उन्नतिका मार्ग सीधा हो सकता है ।

सुधारका प्रारंभ ।

हमेंशा यह बात ध्यानमें धारण करना चाहिये कि सुधारका प्रारंभ अपने अन्तःकरणके सुधारसे होता है । जो लोग अपने अन्तःकरणके सुधार करनेके विना ही दूसरोंके सुधार करनेके कार्यमें लगते हैं, वे न तो उस कार्यको निभा सकते हैं और न स्वयं उन्नत हो सकते हैं। इसलिये वेदने इस सूक्तके छठे मंत्रमें अपने सुधारसे जगत्का सुधार करनेका उपदेश किया है, वह अवश्य देखिये -

अहं मनसा मनांसि गृभ्णामि ।
मम वशेषु वः हृदयानि कृणोमि ॥ (सू. ८, मं.६)

'मैं अपने मनसे अन्य लोगोंके मन आकर्षित करता हूं ! इस प्रकार मैं अपने वशमें अन्योंके हृदयोंको करता हूं।'

इस मंत्रमें 'अपने शुभाचरणसे अन्योंके दिलोंको आकर्षित करनेका उपदेश' हरएकको ध्यानमें रखने योग्य है । पाठक ही विचार करें और अपने चारों ओर देखें कि कौन दूसरोंके मनोंको आकर्षित कर सकता है ? क्या कभी कोई दुराचारी अशुभ संकल्पवाला मनुष्य जनताके मनोंको आकर्षित कर सकता है ? ऐसी बात कभी नहीं होती। सत्पुरूष और शुभ संकल्पवाले पुण्यात्मा ही जनताके मनोंको आकर्षित कर सकते हैं । जीवित अवस्थामें ही नहीं प्रत्युत मरनेके पश्चात् भी उनके सद्भावप्रेरित शब्द जनताके मनोंका आकर्षण करते रहते हैं । यह उनमें सामर्थ्य उनके शुभ और सत्य संकल्पोंके कारण ही उत्पन्न होता है । ऐसे पुरूष जो बोलते हैं वैसा जनता करती है, यह उनकी तपस्याका फल है । हरएक मनुष्यको यह सामर्थ्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। अपने संकल्पोंकी पवित्रता करनेसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है । जो अपनी पवित्रता जितनी करेगा उतनी सिद्धि उसको प्राप्त होगी । इसके पश्चात् वह पुण्यात्मा कह सकेगा कि -

मम चित्तं चित्तेभिः अनु एत ।
मम यातं अनु वर्त्मान एत ॥(सू.८, मं.६)

'मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोंको बनाओ, मेरे अनुकूल चलते हुए मेरे मार्गसे चलो ।'

वस्तुतः जो पुण्यात्मा सत्य मार्गपर चलके अपने शुभ मंगल संकल्पोंसे जनताके मनोंको आकर्षित करते हैं उनके लिये यह सिद्धि अनायास ही प्राप्त होती है । अर्थात् उनके कहनेके विना ही अन्य लोग उनके अनुकूल अपने चित्तोंको करते हैं और उनके मार्गसे ही चलनेका यत्न करते हैं । यह स्वयं होता रहता है । परन्तु जनताको 'अपने मार्गसे चलो' ऐसा कहनेका यदि किसीको अधिकार होगा तो ऐसे पुण्यात्माओंको ही होता है, यह बात यहां कही है । इस प्रकार अपना सुधार करनेवाले पुण्यात्मा जनताके मार्गदर्शक होते हैं । जगत्का सुधार करनेका सच्चा मार्ग इस प्रकार आत्मसुधारमें ही है । इसलिये जो प्रयत्न अयोग्य पुरूष जनताके सुधारके लिये करते है, उतना प्रयत्न यदि वे आत्मसुधारके लिये करेंगे तो अधिक भला हो सकता है । जो शक्ति आती है वह आत्मसुधार करनेके कारण ही आती है । आत्मसुधार करनेके मार्गके विना सच्चे सुधारका कोई मार्ग नहीं है। जब इस मार्गसे शक्तिकी वृद्धि होती है और जब वह अपने मनसे दूसरोंके मनोंको आकर्षित कर सकता है, तभी उसकी जनताको 'अपने पीछे चलो' ऐसा कहनेका अधिकार आता है । वह कहता है कि -

'मेरे मार्गसे मेरे साथ साथ चलो । मेरे चित्तके अनुकूल अपने चित्तोंको बनाकर चलो (मं.६)।' अर्थात् जिस मार्गसमे मैं जाता हू उसी मार्गसे तुम आओ। इसी मार्गसे चलनेपर तुम्हारा भला होगा । इस प्रकार इस अवस्थामें यह मनुष्य जनताका मार्गदर्शक होता है । उसका आचरण और उसका जीवन अन्य जनोंके लिये मार्गदर्शक अर्थात् आदर्श होता है ।

संवेश्य राष्ट्र ।

उक्त प्रकारके मार्गदर्शक आदर्श जीवनवाले धर्मात्मा और पुण्यात्मा जिस राष्ट्रमें अधिक होते हैं और जहांके लोग उनके अनुकूल अपने आचरण बनाकर चलते हैं, उस राष्ट्रको 'संवेश्य राष्ट्र' कहते हैं, क्योंकि उसमें (संवेशन) प्रवेश करके वहां रहने योग्य वह राष्ट्र होता है। मनुष्य वहां जाय और रहें और आनंद प्राप्त करें । इस प्रकारका राष्ट्र हमें देवताओंकी कृपासे प्राप्त हो यह प्रथम मंत्रमें प्रार्थना है, देखिये -

अस्मभ्यं ० बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु । (सू.८, मं.१)

'हम सबके लिये देव प्रवेश करने योग्य बडा राष्ट्र देवें।' अर्थात् देवोंकी कृपासे हमें ऐसा उत्तम आदर्श राष्ट्र प्राप्त होवे अथवा हमारा राष्ट्र वेसा ही बने । इस प्रकारके राष्ट्रमें 'मैं प्रमुख बनूंगा' यह महत्त्वाकांक्षा जनताके अन्तःकरणमें रहेगी, क्योंकि इसमें किसी कारण भी किसीके साथ पक्षपात नहीं होगा, इसका सूचक वाक्य द्वितीय मंत्रमें है -

यथा सजातानां मध्यमेष्ठा असानि । (सू.८, मं.२)

'स्वजातियोंकी सभामें मुख्य स्थानमें बैठनेके योग्य मैं होऊंगा ।' यह इच्छा ऐसे राष्ट्रके लोगोंके अन्तःकरणमें रहेगी, इस विषयमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जो पूर्वोक्त आत्मसुधारके मार्गसे अपनी शक्तिका विकास करेंगे वे उक्त स्थानमें जाकर विराजेंगे, अन्य लोग अपनी अपनी योग्यताके अनुसार अपने योग्य स्थानमें अपना कर्तव्य करेंगे । परन्तु किसीको भी उन्नतिके मार्गमें प्रतिबंध नहीं होगा । सब लोग अपने पुरूषार्थसे अपनी उन्नतिका साधन करेंगे और सब मिलकर अपने राष्ट्रको उन्नतिके शिखरपर ले जायंगे । इस विषयमें एक प्रकारकी सात्विक स्पर्धा ही होती है जिसको तृतीय मंत्रने 'उत्तरत्वकी स्पर्धा' कहा है । इस स्पर्धामें परस्परका घात नहीं होता प्रत्युत परस्परकी उन्नति होती है । सब जनताके मनुष्य एक भावसे इस राष्ट्रोन्नतिका अग्नि प्रदीप्त करते हैं और उसमें अपने अपने कर्मोंकी आहुतियां डालते हैं, इस विषयमें तृतीय मंत्रका उत्तरार्ध देखिये

राष्ट्रीय अग्नि ।

अयमग्निर्दीदायद्दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽतिबुवद्भिः ।

(सू.८, मं.३)

'(अ- प्रति-बुवद्भिः) आपसमें विरोधका भाषण न करनेवाले (स-जातैः) स्वजातियोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ यह एक राष्ट्रीयताका अग्नि बहुत दीर्घ कालतक प्रदीप्त स्थितिमें रहे ।' अर्थात् यह बीचमें अथवा कल्पकालमें ही न बुझ जावे । क्योंकि इसी अग्निकी गर्मीसे सब राष्ट्रीय मनोरथ सफल और सुफल होते रहते हैं। इसलिये यह राष्ट्रीय अग्नि सदा प्रदीप्त रहना चाहिये । यह अग्नि वे ही मनुष्य प्रज्वलित रख सकते हैं कि जो (अ- प्रति - ब्रुवत्) आपसमें विरोधके शब्द नहीं बोलते, आपसमें झगडा नहीं करते, आपसमें द्वेष नहीं बढाते, प्रत्युत आपसमें मेल मिलाप करनेकी ही भाषा बोलते हैं । ऐसे सज्जन ही राष्ट्रोन्नतिके महान् अग्निका चयन करते हैं ।

इस सूक्तमें 'सजात्न' शब्द आया है और यह शब्द वेदमंत्रोंमें अनेक वार आया है । 'सजातीय, समान जातीय, स्वजातीय' इत्यादि अर्थमें यह शब्द प्रयुक्त होता है। जिनमें जातिभेदकी भिन्नता नहीं है ऐसे एक जातिवाले, एक राष्ट्रीयतावाले लोग, यह अर्थ इस शब्दका है । जातीभेदके कारण एक दूसरेसे लडनेवाले लोग 'सजात' नहीं कहलायेंगे । एक राष्ट्रके लोग परस्पर 'सजात' ही होते हैं, परन्तु उनमें राष्ट्रीयताकी भावना प्रबल रहनी चाहिये और छोटी जातपातकी भावना गौण होनी चाहिये। ऐसे लोग जब आपसमें एकताके प्रेमसे कोई कार्य करते हैं तब उनमें एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है, वही अग्नि शब्द द्वारा तृतीय मंत्रमें कही है । यही राष्ट्रभक्तिका अग्नि है जो कि संपूर्ण राष्ट्रकी उन्नतिमें सहायक होता है ।

राष्ट्रका पोषक ।

इस प्रकारके राष्ट्रके सच्चे पोषक दोही लोग होते हैं, उनका वर्णन चतुर्थ मंत्र द्वारा हुआ है -

इर्यो गोपा पुष्टपतिर्व आजत् । (सू.८, मं.४)

'(इर्यः) अन्नका उत्पन्न करनेवाला और (गो-पा) गौओंकी रक्षा करनेवाला ये दो आप लोगोंकी पुष्टि करनेवाले हैं ।' यह मंत्रभाग बहुत मनन करने योग्य है। अन्नकी उत्पत्ति करनेवाला किसान और गौओंकी रक्षा करनेवाला गवलिया ये दो वर्ग राष्ट्रकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं । राष्ट्रीक बुनियाद ठीक करनेका कार्य ये लोग करते हैं, इसलिये राज्यशासनमें इनकी स्थिति अच्छी करनेका विशेष प्रबंध होना अत्यंत आवश्यक है। यदि अन्न उत्पन्न करनेवाले किसान और गोरक्षक ये दो वर्ग राष्ट्रमें अवनत हुए तो राष्ट्रकी कदापि पुष्टि नहीं हो सकती । पाठक इस दृष्टिसे इनका महत्त्व जानें और यह उपदेश इस प्रसंगमें देनेमें वेदने कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही है यह भी स्मरण रखें ।

शूरपुत्रोंवाली माता ।

राष्ट्रकी बुनियाद 'संतान' है । पुत्र और पुत्रियां ही राष्ट्रका भावी उत्कर्ष या अपकर्ष करनेवाली होती है । इनकी सच्ची शिक्षा माताके द्वारा होती है । माता अपने बालबच्चोंको किस प्रकार शिक्षा देवे इसकी सूचना द्वितीय मंत्रमें दी है । इस विषयके सूचक शब्द ये हैं -

शूरपुत्रां अदितिं देवी हुवे । (सू. ८, मं.२)

'शूर पुत्रोंकी अदीना देवी माताको मैं बुलाता हूं ।' अथवा उनकी मैं प्रशंसा करता हूं । यहांका 'अ-दिति' शब्द 'अदीन, प्रतिबंधमें न रहनेवाली, राष्ट्रके स्वाधीनताके विचार रखनेवाली' इत्यादि भाव रखता है ।'शूरपुत्रा' शब्दका भाव स्पष्ट है। राष्ट्रमें देवियां ऐसी हो जिनको अदीन और वीरपुत्रा कहा जावे। 'वीरसूर्भव' अर्थात् वीर पुत्र उत्पन्न कर यह वैदिक आशीर्वाद सुप्रसिद्ध है । वही बात अन्य रीतिसे यहां बताई है।

राष्ट्रीय शिक्षा ।

इस प्रकारकी वीरमाताएं जहा होगीं वहा ही राष्ट्रीयताके भाव परम उत्कर्षलक पहुंच सकते हैं । देवियोंको, बहिनोंको और पुत्रियोंको किस ढंगसे शिक्षा देना चाहिये इसका विचार भी यहां निश्चित हो जाता है। जिस शिक्षासे

माताएं वीरपुत्र उत्पन्न करनेवाली हो ऐसी शिक्षा उनको देनी चाहिये ।

दैवी सहायता ।

उक्त राष्ट्रीयताके विचारोंकी पूर्णता होकर संपूर्ण जनता इस रीतिसे समर्थ राष्ट्रशक्तिसे युक्त होवे, इस विषयमें चतुर्थ मंत्र देखिये -

अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उप-
सयन्तु ॥ सू.८,मं ४)

' सब देव इस कामानाकी पूर्तिकी इच्छा करनेवाली तुम सब प्रजाओंकी एकताके विचारसे युक्त करें ।' अर्थात् तुम सब लोगोंमें एकताका विचार बढ जावे । यह एक प्रकारसे पूर्ण और उच्च आशीर्वाद है । जो पाठक परमेश्वर भक्तिपूर्वक राष्ट्रोन्नतिके लिये प्रयत्नशील होंगे वे ही इस आशीर्वादको प्राप्त करनेके अधिकारी हो सकते हैं ।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ।

इस सूक्तके अन्य मंत्रभागमें 'मित्र, वरूणादि देवोंकी सहायता हमें राष्ट्रशक्ति बढानेके कार्यमें प्राप्त हों' यह आशय है। यह आशय आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक कार्यक्षेत्रमें देखकर अर्थबोध लेनेकी रीति इससे पूर्व कई प्रसंगोंमें वर्णन की है । (विशेषकर काण्ड १, सू.३०,३१ के विवरण देखिये) इसलिये उसका यहां पुनः विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । उक्त दृष्टिसे पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करें और बोध प्राप्त करें ।

•••

क्लेश - प्रतिबन्धक उपाय ।

(९)

(ऋषिः- वामदेवः । देवता - द्यावापृथिवी, देवाः)

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथापः कृणुता पुनः ॥ १ ॥
अश्रेष्माणो अधारयन्तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥ २ ॥

अर्थ- (**कर्श+फस्य =कृशस्य**) कृश अथवा निर्बलकी अथवा उसी प्रकार (**विश+फस्य**) प्रबलकी भी (**माता पृथिवी**) माता पृथ्वी है और उनका (**पिता द्यौः**) पिता द्युलोक है । हे (**देवाः**) देवो ! (**यथा अभिचक्र**) जैसा पराक्रम किया था (**तथा पुनः अपकृणुत**) उसी प्रकार फिर शत्रुओंका प्रतिकार करो ॥१॥

जैसे (**अ - श्रेष्माणः अधारयन्**) न थकनेवाले ही किसीका धारण करते रहते हैं (**तथा तत् मनुना कृतम्**) उसी प्रकार वह कार्य मननशीलने भी किया होता है। (**मुष्काबर्हः गवां इव**) जैसा अण्डकोश तोडनेवाला मनुष्य बैलोंको निर्बल कर देता है उसी प्रकार मैं (**वि - स्कन्धं वध्रि कृणोमि**) रोगादि विघ्नको निर्बल करता हूं ॥२॥

भावार्थ - बलवान् और निर्बल इन दोनोंके माता - पिता भूमि और द्युलोक हैं । अर्थात् ये दोनों प्रकारके लोग आपसमें भाई हैं । देवता लोग पराक्रम करके शत्रुका पराभव करते हैं, शत्रुको हटा देते हैं और निर्बलोंका संरक्षण करते हैं ॥१॥

न थकते हुए परिश्रम करनेवाले ही विशेष कार्य करनेमें समर्थ होते हैं । मननशील मनुष्य भी वैसा ही पुरूषार्थ करते हैं । मैं भी उसी प्रकार शत्रुको तथा विघ्नोंको निर्बल करता हूं, जिस प्रकार अण्डकोश तोडनेवाला बैलका अण्डकोश तोडकर उसको निवीर्य कर देते हैं ॥२॥

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं बध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥ ३ ॥
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥ ४ ॥
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥ ६ ॥

अर्थ - (वेधसः) ज्ञानी लोग (**पिशङ्गे सूत्रे**) भूरे रंगवाले सूत्रमें (**तत् खृगलं आबध्नन्ति**) उस मणिको बांधते हैं। (**बंधुरः**) बंधन करनेवाले (**श्रवस्युं शुष्मं काबवं**) प्रसिद्ध प्रबल शोषक रोगको (**बध्रिं कृण्वन्तु**) निर्बल करें ॥३॥

हे (**श्रवस्यवः**) यशस्वी पुरूषो! (**येन**) जिससे (**असुरमायया देवाः इव चरथ**) जीवन दाताकी कुशलतासे युक्त देवोंके समान आचरण करते हो तथा (**कपिः शुनां दूषणः इव**) बंदर जैसा कुत्तोंको तुच्छ मानता है वैसे (**बन्धुरा काबवस्य च**) बंधन करनेवाले रोगका अथवा दुःखका प्रतिबंध करते हैं ॥४॥

(**दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि**) दुष्टताके हटानेके लिये मैं तुझे बांधूंगा । और (**काबवं दूषयिष्यामि**) विघ्नको निर्बल बना दूंगा । (**आशवः रथाः इव**) शीघ्र चलनेवाले रथोंके समान तुम (**शपथेभिः उत् सरिष्यथ**) शापोंके बंधनसे दूर हो जाओगे ॥५॥

(**एकशतं विष्कन्धानि**) एक सौ एक विघ्न (**पृथिवीं अनु विष्ठिता**) पृथ्वीपर रहे हैं । (**तेषां अग्रे**) उनके सामने (**विष्कन्धदूषणं त्वां मणिं**) कष्टनाशक तुझ मणिको (**उत् जहरूः**) ऊंचा उठाया है । सबसे बढकर माना है ॥६॥

भावार्थ - भूरे रंगके सूत्रसे ज्ञानी लोग मणिको बांधते हैं जिससे प्रसिद्ध शोषक रोगको निवीर्य बना देते हैं ॥३॥

यशस्वी पुरूष जीवनके दैवी मार्गसे जाते हैं और मृत्युको दूर करते हैं, बंदर वृक्षपर रहता हुआ कुत्तोंको तुच्छ मानता है, इसी प्रकार रोग प्रतिबंधकी विद्या जाननेवाले रोगको दूर करते हैं ॥४॥

दुष्ट स्थितिको दूर करनेके लिये योग्य प्रतिबंध करना चाहिये, उसी प्रकार रोगादि विघ्नोंको निर्बल करना चाहिये । जैसे वेगवाले रथसे मनुष्य पहुंचनेके स्थानपर शीघ्र पहुंच जाता है, उसी प्रकार उक्त मार्गसे मनुष्य दुष्ट अवस्थासे मुक्त हो जाता है ॥५॥

पृथ्वीपर सैंकडों विघ्न और दुःख है । उनके प्रतिबंधक उपायोंमें दुःखप्रतिबंधक मणि विशेष प्रभावशाली है जिसको धारण किया जाता है ॥६॥

यह सूक्त समझनेके लिये बडा कठिन और अत्यंत दुर्बोध है । इस सूक्तके 'कर्शफ, विशफ, सृगल, काबव' ये शब्द अत्यंत दुर्बोध है और बहुत प्रयत्न करनेपर भी इन शब्दोंका समाधानकारक अर्थ इस समयतक पता नहीं लगा ।जो पाठक वेदके अर्थकी खोज कर रहे हैं वे इस विषयकी खोज अवश्य करें ।

सबके माता पिता ।

प्रथम मंत्रके प्रथमार्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह सबके बंधुभावकी बात है ।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।

(सू.९, मं.१)

जगत्में दो प्रकारके मनुष्य है, एक (कर्श+फ =कृश) अशक्त बलहीन अथवा जगत्की स्पर्धामें (कर्+शफ)

बुरे खुरवाले अर्थात् जो अपना बचाव कर नहीं सकते, और दूसरे (विश+फ) अपने आपका प्रवेश दूर दूरतक कर सकते हैं और दूसरोंका पराजय करके अपना अधिकार दूसरोंपर जमा देते हैं । इसी शब्दका दूसरा अर्थ यह है कि (वि+शफ) विशेष खुरवाले अर्थात् जो पशु दूसरोंको लाथे मारनेमें समर्थ होते हैं । 'विशफ' के दोनों अर्थोंमें समान भाव यह है कि 'पाशवी शक्तिसे युक्त ।'

विश्वबन्धुत्व ।

जगत्में ये दो प्रकारके लोग हैं, एक (वि+शफ) पाशवी शक्तिसे युक्त और दूसरे (कर्शफ) पाशवी शक्तिसे हीन । सदा ही ऐसा देखा जाता है कि पाशवी शक्तिसे बली बने हुए लोक निर्बल लोगोंको दबाते रहते हैं । इस कारण सामाजिक, राजकीय और धार्मिक विषमता बढ जाती है और उसी प्रमाणसे जनताके क्लेश बढते जाते हैं। इन क्लेशोंके निवारणका एक मात्र उपाय यह है कि 'सब लोग परस्पर भाई हैं और एक परम पिता और एक परम माताकी संतानें हैं,' इस उच्च भावको जाग्रत करना । यदि निर्बल और सबल दोनों मानेंगे कि 'हम सबका परम पिता और परम माता एक ही है, इसलिये हम सब मनुष्य आपसमें भाई भाई हैं' तो पश्चात् एक दूसरेसे झगडा करनेका कारण ही नहीं रहेगा । क्योंकि जो झगडा होता है वह परकीयताके भावसे होता है, वह परकीय भाव इस प्रकार हट गया तो झगडा ही नही रहेगा । सामाजिक, राजकीय और धार्मिक झगडे हटानेका पहला उपाय वेदने यह बताया है ।

मातृभूमिको अपनी माता मानना और सूर्य, द्युलोक अथवा प्रकाशमय देवको अपना पिता समझना, यह झगडा मिटानेके लिये उत्तम उपाय है । मातृभूमिकी भक्ति यदि जनताके मनमें जाग्रत हो गई तो उन सबकी एकता होनेमें विलंब नहीं लगेगा । मातृभूमिकी भक्ति ही ऐस एक वस्तु है कि जो राष्ट्रीय एकताको विकसित कर देती है और सबमें अद्भुत सामर्थ्य उत्पन्न कर देती है । मातृभूमिकी भक्तिमें विशेषतः स्वदेशप्रेम ही आता है परन्तु भूमिमाताका विस्तृत अर्थ लेनेपर विश्वबंधुत्वकी कल्पना भी आती है ।

पराक्रम ।

मातृभूमिका हित करनेका उद्देश्य अपने सन्मुख रखकर, उस संबंधमें उत्पन्न होनेवाले अपने कर्तव्य करनेके लिये और उस सब कार्य के लिये आवश्यक त्याग करनेके लिये मनुष्योंको् सिद्ध रहना चाहिये । जिस प्रकार देवासुर युद्धमें देव असुरोंको हटानेके कार्यमें बडा पराक्रम करते हैं, असुरोंपर आक्रमण करते हुए उनको हटा देते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंको हटानेके कार्यमें बडा पुरूषार्थ करना चाहिये। शत्रुका पराभव करना और उनको दूर करना ये दो बातें इस पुरूषार्थमें मुख्य हैं -

यथाऽभिचक्र देवास्तथाऽप कृणुता पुनः ॥

(सू.९, मं.१)

'जैसा (अभिचक्र) शत्रुपर हमला करना चाहिये वैसा ही (अपकृणुत) उनको दूर करना चाहिये।' हमला करके शत्रुका पराभव करना चाहिये और उनको अपने स्थानसे परे भी हटाना चाहिये । इतना सब करके अशक्तोंका रक्षण करना चाहिये।

यह सब होनेके लिये, सब लोगोंका बंधुत्व व परमात्माको सबका माता पिता मानना, इन दो बातोंकी आवश्यकता है। पाठक इस अतिश्रेष्ठ उपदेशका अच्छी प्रकार मनन करें।

परिश्रमसे सिद्धि ।

परिश्रम करनेके विना कुछ भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है । जो सिद्धि होती है वह प्रयत्नसे साध्य होती है । जो भी विजयी लोग हुए हैं वे थकावटसे ग्रस्त नही होते थे । वे परिश्रम करनेके लिये डरते नहीं थे, इसीलिये उनमें धारक शक्ति उत्पन्न हुई और वे जातियों, समाजों और राष्ट्रोंका धारण कर सके । इसीलिये मंत्रमें कहा है -

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ॥ (सू.९,मं.२)

'जो परिश्रम करनेसे नहीं थकते वेही धारण करते हैं। मननशीलने भी वैसा ही कर लिया था।' परिश्रम करनेके विना धारक शक्ति नहीं आ सकती । और जो मननशील लोग हैं वे भी अपनी मनन शक्तिसे इसी परिणामतक पहुंचे हैं । प्रयत्न शीलता ही मनुष्य मात्रका उद्धार करनेवाली है । इस लिये हरएक मनुष्यको प्रयत्न शीलताका महत्त्व जानकर पुरूषार्थ प्रयत्नसे अपना उद्धार करना चाहिये और अपने राष्ट्रका भी अभ्युदय साधन करना चाहिये ।

परिश्रमी पुरूष अपने प्रयत्नसे सब विघ्न दूर कर सकता है, उसके लिये सब ही अवस्थाएं प्रयत्न साध्य होती है, उसके लिये अशक्य और अप्राप्य ऐसा कोई स्थान नहीं होता है, वह निश्चयपूर्वक कहता है कि -

कृणोमि वघ्नि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गुवामिव। (सू.९, मं.२)

'मैं निश्चयसे विघ्नको निर्बल करता हूं जिस प्रकार अण्डकोशको तोडनेवाले लोग बैलोंको निश्चयसे निवीर्य करते हैं।' पुरूषार्थ प्रयत्नसे सब विघ्न, सब प्रतिबंध, सब

आधिव्याधियोंके कष्ट दूर हो सकते हैं । पुरूषार्थ प्रयत्नके सन्मुख ये विघ्न ठहर ही नहीं सकते ।

यहां बैलोंके अण्डकोश तोडकर उनको प्रजननके कार्यके लिये असमर्थ बनानेकी विद्याकी सूचना है । सेतीके लिये इसी प्रकारके बैलोंका उपयोग होता है ।

असुर - माया ।

'असुरमाया' का विषय चतुर्थ मंत्रमें आया है। 'माया' शब्दका अर्थ 'कौशल्य, हुनर, कला, प्रवीणताका कर्म' है । 'असुर' शब्दका अर्थ '(अ-सूर) दैत्य अथवा (असु-र) जीवनकी विद्या जाननेवाले और उस विद्याका प्रकाश करनेवाले है । इसलिये 'असुर माया' का अर्थ 'असुरोंके पारसा कला कौशल, हुनर अथवा जीवनके साधन प्राप्त करनेकी विद्या है। यह असुर माया अपनी अपनी ढंगकी देवोंके पास भी रहती है और दैत्योंके पास भी होती है। देव सम्पूर्ण प्रकारकी यह विद्या प्राप्त करते हैं और अपनी उन्नति सिद्ध करते हैं और श्रेष्ठत्व प्राप्त करते हैं, इस विषयमें कहा है -

असुरमायया देवा इव श्रवस्यवः चरथ । (सू.९,मं.४)

'इस जीवनकी विद्यासे जैसे देव चलते हैं, वैसे तुम भी यशस्वी और प्रशंसित होकर चलो।' देव जैसे इन जीवन विद्यासे यशस्वी होते हैं वैसे ही तुम भी होओ । यह चतुर्थ मंत्रका कथन मनुष्योंको पुरूषार्थके मार्गपर चलानेके लिये ही है । जो मनुष्य इस मार्गसे चलेंगे, वे देवोंके समान पूजनीय होंगे और यशके भी भागी बनेंगे ।

सैंकडों विघ्न ।

इस पृथ्वीपर विघ्न तो सैंकडों है, व्यक्ति, समाज, जाती और राष्ट्रकी उन्नतिमें सैंकडों किस्मके विघ्न होते हैं । जो भी पुरूषार्थ करनेका कार्य चला हो, उसमें विघ्न तो अवश्य ही होंगे, परंतु उनसे डरना नहीं चाहिये। इन विघ्नोंके विषयमें कहा है -

एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।

(सू.९, मं.६)

'सैंकडों विघ्न पृथ्वीपर हैं ।' जब ये विघ्न हैं और हरएक कार्यमें ये रहेंगे ही तब उनसे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । उनको प्रतिबंध करते हुए आगे बढना चाहिये। आगे बढनेके लिये अपना वेग बढाना चाहिये -

आशवो रथा इव शपथेभिः उत् सरिष्यथ । (सू.९,मं.५)

'शीघ्रगामी रथ जैसे शीघ्र आगे बढते हैं उसी प्रकार पुरूषार्थ प्रयत्न करनेसे तुम भी विघ्नोंको पीछे डालकर आगे बढ जाओगे ।' अपना वेग बढानेसे विघ्न पीछे हटते हैं, परंतु जो अपना वेग कम करते हैं, वे विघ्नोंसे त्रस्त होते हैं । इसलिये अपनी पुरूषार्थ शक्ति बढानेसे मनुष्य विघ्नोंका परास्त करके विजयका मार्ग सुधर सकते हैं। इस विषयके उदाहरण देखिये -

शुनां दूषणः कपिः इव । (सू.९, मं.४)

'कुत्तोंका तिरस्कार करनेवाला बंदर जैसा होता है ।' बंदर वृक्षपर रहते हैं इसलिये वे कुत्तोंकी पर्वाह नहीं करते । वे कुत्तोंको तुच्छ समझते हैं क्योंकि वे कुत्तोंकी अपेक्षा बहुत ऊंचे स्थानपर रहते हैं, अतः कुत्ते उन बंदरोंको कोई विघ्न कर नहीं सकते । इसी प्रकार जिन स्थानोंमें विघ्न होते हैं उन स्थानोंको छोडकर उनसे ऊंचे स्थानोमें रहनेसे कोई विघ्न, कष्ट नहीं दे सकते । जैसे बंदर वृक्षपर रहेनेके कारण कुत्तोंके कष्टोंसे बचे रहते हैं, इसी प्रकार हरएक विघ्नसे मनुष्य अपने आपको बचावे । विघ्नका जो स्थान होगा उससे अपना स्थान ऊंच करनेसे मनुष्य उनसे सदा दूर रह सकता है । इसी विषयके सूचक निम्न लिखित मंत्र हैं -

अवस्युं शुष्मं काबवं वघ्निं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥

(सू.९, मं.३)

काबवस्य च बन्धुराः ॥ (सू.९, मं.४)

काबवं दूषयिष्यामि॥ (सू.९, मं.५)

'विघ्नोंका प्रतिबंध करनेवाले लोग प्रसिद्ध शोषक विघ्नको निर्बल कें । विघ्नका प्रतिबन्ध करें । मैं विघ्नको परास्त करूंगा ।'

ये सब विधान विघ्नोंका प्रतिबंध करनेके सूचक हैं । विघ्नोंको परास्त करना अथवा विघ्नोंको दूर करना यह मनुष्यका ध्येय हैं और इसके उपाय इससे पूर्व दिये ही है । शारीरिक व्याधियोंसे अपने आपका बचाव करनेके लिये मणि धारणका उपाय इससे पूर्व कई सूक्तोंमें कहा गया है ।(देखो काण्ड२, सूक्त ४) इस प्रकारके मणि धारणसे रोगोंका प्रतिबंध हो जाता है इसलिये मणि धारणकी सूचना देनेके लिये इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्र भाग हैं -

पिशंगे सूत्रे स्वृगलं तदा बन्धन्ति वेधसः। (सू.९, मं.३)

दुष्ट्यै हित्वा भत्स्यामि । (सू.९, मं.५)

तेषां त्वामग्र उज्जहरूर्मणिं विष्कन्ध - दूषणम् ॥
(सू.९. मं.६)

'भूरे रंगवाले सूत्रमें ज्ञानी लो इस मणिको बांधते हैं। दुरवस्थां हटानेके लिये तुझे बांधूंगा। मणिको विघ्नोंका निर्बल करनेवाला सबसे मुख्य उपाय मानकर ऊपर उठाते और धारण करते हैं।'

इन मंत्र भागोंसे स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिके शारीरिक रोगरूपी आधिव्याधियोंको हटानेके लिये यह मणिधारण एक उत्तम उपाय है। सामाजिक और राष्ट्रीय विघ्नोंको दूर करनेके लिये विश्वबंधुत्वकी कल्पनाका फैलाव करनेका उपाय प्रमुख स्थान रखता है। तथा अन्यान्य संपूर्ण विघ्नोंको हटानेके लिये परिश्रम करने अर्थात् पुरुषार्थ करनेकी शक्ति मनुष्यमें पर्याप्त है। इस सूक्तका अच्छा मनन पाठक करेंगे तो उनको अपनी उन्नतिका मार्ग विघ्नरहित करनेका उपाय निःसंदेह प्राप्त हो सकता है।

• • •

कालका यज्ञ ।

(१०)

(ऋषिः - अथर्वा । देवता - एकाष्टका, नानादेवता)

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ १ ॥
यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ २ ॥
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा नु आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ३ ॥

अर्थ - (**प्रथमा ह वि+ उवास**) पहली उषाकी वेला उदयको प्राप्त हुई । (**सा यमे धेनुः अभवत्**) वह नियममें धेनु जैसी हुई । (**सा पयस्वती**) वह दूध देनेवाली धेनु (**नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां**) हमारे लिये उत्तरोत्तर अर्थात् आनेवाले वर्षोंमें दूध देती रहे ॥१॥

(**देवाः**) देव (**यां उपायतीं रात्रिं धेनुं**) जिस आनेवाली रात्री रूपी धेनुको देखकर (**प्रतिनन्दन्ति**) आनन्दित होते हैं । (**या संवत्सरस्य पत्नी**) जो संवत्सरकी पत्नीरूप है (**सा नः सुमङ्गली अस्तु**) वह हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली होवे ॥२॥

हे (**रात्रि**) रात्री ! (**यां त्वा**) जिस तुझको (**संवत्सरस्य प्रतिमां**) संवत्सरकी प्रतिमा मानकर (**उपास्महे**) हम सब भजते हैं, (**सा नः आयुष्मतीं प्रजां**) वह हमारी दीर्घ आयुवाली प्रजाको (**रायः पोषेण संसृज**) धनकी पुष्टिसे संयुक्त कर ॥३॥

भावार्थ - पहली उषा उदयको प्राप्त हुई है । जो सुनियमोंका पालन करता है उसके लिये यह वेला कामधेनु जैसी अमृत रस देनेवाली बनती है । इसलिये यह वेला हमारी भविष्यकी आयुमें हमें भी अमृत रस देनेवाली बने ॥१॥

प्राप्त होनेवाली इस रात्री रूपी कामधेनुको देखकर देव आनंदित होते हैं । यह संवत्सरकी पत्नी रूपी वेला हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली बनो ॥२॥

संवत्सरकी प्रतिमा रूप यह रात्री है, इसकी उपासना हम करते हैं, इसलिये यह हमारे संतानोंको दीर्घ आयु,धन और पुष्टि देवे ॥३॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ४ ॥
वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५ ॥
इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥ ६ ॥
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान्यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥ ७ ॥

अर्थ - (इयं एव सा) यही वह है कि (या प्रथमा व्यौच्छत्) जो पहली प्रगट हुई,और जो (आसु इतरासु प्रविष्टा चरति) इन इतरोमें प्रविष्ट होकर चलती है । (अस्यां अन्तः महान्तः महिमानः) इसके अन्दर बडी महिमाएं हैं । (नव -गत् वधूः जनित्री जिगाय) यह नूतन कुलवधू जननी होती हुई विजय करती है ॥४॥

(परिवत्सरीणं हविः कृण्वन्तः) सांवत्सरिक हवनका अन्न बनानेवाले (वानस्पत्याः ग्रावाणः घोषं अक्रत) वनस्पतिके साथ संबंध रखनेवाले पत्थर शब्द कर रहे हैं । हे (एकाष्टके) एक अष्टका ! (वयं सुप्रजसः सुवीराः) हम सब उत्तम सन्तानवाले और उत्तम वीरोंवाले तथा (रयीणां पतयः स्याम) धनके स्वामी होवें ॥५॥

हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थोंको जाननेवाले अग्नि ! (इडायाः घृतवत् सरीसृपं पदं प्रति) गौके घीसे युक्त स्रवनेवाले स्थानके प्रति (हव्या गृभाय) हव्यको ग्रहण कर । (ये ग्राम्याः विश्वरूपाः पशवः) जो ग्रामीण अनेक रूपवाले पशु हैं (तेषां सप्तानां रन्तिः मयि अस्तु) उन सातोंकी प्रीति मुझमें होवे ॥६॥

हे (रात्रि) रात्री ! (पुष्टे च पोषे च मा आ भर) पुष्टि और पोषणके संबंधमें मुझको भर दे । हम (देवानां सुमतौ स्याम) देवोंकी सुमतिमें रहें । हे (दर्वे) चमस ! तू (पूर्णा परा पत) पूर्ण भरी हुई दूर जा और (सुपूर्णा पुनः आपत) उत्तम पूर्ण होकर पुनः पास आ । (सर्वान् संभुञ्जन्ती) सब यज्ञोंका उत्तम प्रकार सेवन करती हुई (नः इषं ऊर्जे आ भर) हमारे लिये अन्न और बल लाकर भर दे ॥७॥

भावार्थ- यही वेला वह है कि जो पहले प्रकट हुई थी और जो अन्य वेलाओंके साथ संयुक्त होकर चलती है। इस वेलामें अनेक महत्त्वपूर्ण शक्तियां हैं । यह वेला विजय करती है जिस प्रकार नवीन कुलवधु प्रथम संतान उत्पन्न करती हुई कुलका यश बढाती है ॥४॥

आज सांवत्सरिक हवनकी सामग्री बनानेवाले - सोमरस निकालनेवाले - पत्थर और काष्ठयंत्र आवाज कर रहे हैं । हे एकाष्टके ! हम सब उत्तम संतान युक्त और उत्तम वीरोंसे युक्त होकर बहुत धनके स्वामी बनें ॥५॥

हे जातवेद ! तू गौके घीसे युक्त तथा जिसमेंसे गौका घी चू रहा है ऐसा घीसे पूर्ण भिगा हुआ हव्य ग्रहण कर। जो अनेक रंगरूपवाले ग्राम्य सात पशु हैं वे मेरे ऊपर प्रेम करते हुए मेरे साथ रहें ॥६॥

हे रात्री ! हमें बहुत पुष्टि और शक्ति दे । देवोंकी मंगलमयी मति हमें सहारा देती रहे । हे चमस ! तू घीसे पूर्ण होकर अग्निमें आहुति देनेके लिये आगे बढ, और वहांकी दैवीशक्तिसे पूर्ण होकर हमारे पास फिर लौट आ और हमारे लिये अन्न और बल विपुल प्रमाणमें दें ॥७॥

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥ ८ ॥
ऋतून्यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान्मासान्भूतस्य पतये यजे ॥ ९ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो मात्रभ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ १० ॥
इडया घृतवता जुह्वतो वयं देवान्घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥ ११ ॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥ १२ ।

अर्थ - हे (एकाष्टके) एकाष्टके ! (अथं संवत्सरः) यह संवत्सर (ते पतिः) तेरा पति होकर (आ अगन्) आया है। (सा) वह तू (नः आयुष्मतीं प्रजां) हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको (रायः पोषेण सं सृज) धनकी पुष्टिसे युक्त कर ॥८॥

(मासान् ऋतून् आर्तवान् ऋतुपतीन्) मास, ऋतु, ऋतुसंबंधी ऋतुपतियोंको तथा (उत हायनान् समाः संवत्सरान् यजे) अयनवर्ष, समवर्ष और संवत्सरको अर्पण करता हूं और (भूतस्य पतये यजे) भूतके स्वामीके लिये यज्ञ करता हूं ॥९॥

(माद्भयः ऋतुभ्यः आर्तवेभ्यः संवत्सरेभ्यः) महिने, ऋतु, ऋतुसे संबंध रखनेवाले तथा वर्ष इन सबके लिये और (धात्रे, विधात्रे, समृधे) धाता, विधाता तथा समृद्धिके लिये (भूतस्य पतये यजे) भूतोंके पतिके लिये मैं अर्पण करता हूं ॥१०॥

(इडया घृतवता जुह्वतः) गौ द्वारा प्राप्त घीसे युक्त अर्पण द्वारा हवन करनेवाले (वयं देवान् यजे) हम सब देवोंका यजन करते हैं । (अलुभ्यतः गोमतः गृहान्) जिसमें न्यूनता नहीं है, जो गौओंसे युक्त हैं, ऐसे घरोंमें (वयं उपसं विशेम) हम प्रवेश करेंगे ॥११॥

(एकाष्टका तपसा तप्यमाना) यह एक अष्टका तपसे तपती हुई (महिमानं इन्द्रं गर्भे जजान) बडे महिमावाले इन्द्र रूपी गर्भको प्रकट करती रही । (तेन देवाः शत्रून् वि - असहन्त) उससे देवोंने शत्रुओंको जीत लिया। (दस्यूनां हन्ता शचीपतिः अभवत्) क्योंकि शत्रुओंका नाश करनेवाला शक्तिशाली प्रगट हुआ है ॥१२॥

भावार्थ - हे एकाष्टके ! यह संवत्सर तेरा पतिरूप है, उसकी पत्नीरूप तू हमारे बालबच्चोंके लिये दीर्घ आयुष्य, धन और पुष्टि दे ॥८॥

मैं अपने दिन, पक्ष, मास, ऋतु, काल, अयन और संवत्सर आदि कालवयवोंको भूतपति परमेश्वरके यजनके लिये समर्पित करता हूं अर्थात् अपनी आयुको यज्ञके लिये अर्पण करता हूं ॥९॥

मास, ऋतु, (शीत, उष्ण, वृष्टिसंबंधी तीन) काल, अयन, संवत्सर आदि मेरी आयुके कालविभागोंको धाता, विधाता, समृद्धिकर्ता भूतपति परमात्माके लिये अर्थात् यज्ञके लिये समर्पित करता हूं ॥१०॥

गौके घीसे मैं देवोंका यजन करता हूं और ऐसे यज्ञ करता हुआ मैं अपने घरोंमें प्रवेश करता हूं । हमारे घरोंमें बहुतसी दूध देनेवाली गौंवे सदा रहें और हमारे घरोंमें कभी किसी पदार्थकी न्यूनता न हो ॥११॥

यह एकाष्टका तप करती हुई बडे प्रभावशाली इन्द्र नामक गर्भको धारण करती है और पश्चात् प्रकट करती है। इस इन्द्रके प्रभावसे शत्रु दूर भाग जाते हैं अथवा पूर्ण परास्त होते हैं। यह शक्तिशाली इन्द्र शत्रुओंका नाशक है ॥१२॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥ १३ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

अर्थ - हे **(इन्द्रपुत्रे)** इन्द्र जैसे पुत्रवाली ! हे **(सोमपुत्रे)** चन्द्रमा जैसे पुत्रवाली ! तू **(प्रजापतेः दुहिता असि)** तू प्रजापतिकी दुहिता है, **(नः हविः पति गृह्णीष्व)** हमारा हवि तू स्वीकार कर **(अस्माकं कामान् पूरय)** और हमारी कामनाओंको पूर्ण कर ॥१३॥

भावार्थ - हे इन्द्रको जन्म देनेवाली ! और हे सोमको जन्म देनेवाली अष्टके ! तू प्रजापतिकी दुहिता है । इस यज्ञमें जो हवि हम अर्पण कर रहे हैं उसका स्वीकार कर और हमारी संपूर्ण इच्छाएं पूर्ण कर ॥१३॥

कामधेनु ।

काल अर्थात् समय अथवा वेला, यह एक बडी शक्तिशाली कामधेनु है । यह किस मनुष्यके लिये कामधेनु होती है और किसके लिये नहीं होती, इस विषयमें प्रथम मंत्रका कथन मनन करने योग्य है -

प्रथमा ह व्युवास, सा धेनुरभवद्यमे ॥

(सू.१०, मं.१)

'पहली उषा प्रकाशित हुई है, वही नियमोंका पालन करनेवालेके लिये दूध देनेवाली गौ जैसी होती है।' उषा ही वेलाकी सबसे प्रथम अवस्था है, इस उषासे कालके मापनका प्रारंभ होता है। यह वेला 'यम' के लिये ही दूध देनेवाली गोमाता बनती है । यह यम कौन है । यम यह है -

यम ।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

(योगदर्शन)

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं ।' ये मनुष्यके चालचलनके नियम हैं, इन्हींके साथ 'शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति ये पांच नियम लगे हैं ।' इनका पालन करनेवाला अर्थात् इन नियमोपनियमोंके अनुसार अपना आचरण करनेवाला 'यम' कहलाता है । नियमसे चलनेवाला मनुष्य बडा प्रभावशाली महात्मा होता है, इसी मनुष्यके लिये यह 'समय' कामधेनु बनता है। परन्तु अनियमसे व्यवहार करनेवालेके लिये यह काल भयानक कालरूप बनता है। इसलिये उन्नति चाहनेवाला मनुष्य उत्तम नियमोंके अनुकूल चले, समयका उपयोग उत्तम रीतिसे करे और अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्त करके यशका भागी बने। हरएक मनुष्य चाहता है कि -

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥

(सू.१०, मं.१)

'वह काल हमारे लिये उत्तरोत्तरकी आयुमें अमृत रस देनेवाला होवे ।' यह हरएककी इच्छा रहना स्वाभाविक है, क्योंकि सुख तो हरएकको चाहिये । परंतु बहुत थोडे लोग कालका उपयोग उत्तम रीतिसे करना जानते हैं और यमनियमोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले तो उनसे भी थोडे होते हैं । इसलिये हरएककी इच्छा होते हुए भी बहुतसे मनुष्योंके लिये काल प्रतिकूल होता है और जो पूर्वोक्त प्रकार यमनियमोंसे अपने आपका आचरण सुयोग्य बनाते हैं, उनके लिये ही यह अनुकूल होता है। पाठक यह नियम सबसे प्रथम ध्यानमें धारण करें, क्योंकि उन्नतिके लिये यह सबसे प्रथम आवश्यक है।

उषासे यह काल प्रारंभ होता है, कालका प्रारंभ उषामें है । सब यह जानते हैं कि उषासे दिनका प्रारंभ होता है, इसलिये कई स्थानोंमें उषाको दिनकी माता कहा है । रात्री प्रायः निद्रामें जाती है इसलिये 'नियमोंको आचरणमें लाना, कालका योग्य उपयोग करना' इत्यादि बातें प्रायः दिनके साथ संबंध रखती है । रात्रीका सात

आठ घण्टोंका समय निद्रामें जाता है, इसको छोडकर जो कार्यका समय अवशिष्ट रहता है, उसीका सदुपयोग अथवा दुरूपयोग मनुष्य करता है और उन्नत या अवनत होता है ।

एक पूर्ण दिनमें 'दिन और रात्री' ये दो विभाग है । इतने समयके आठ प्रहर होते हैं । आठ प्रहरोंका नाम 'अष्टक' अथवा अष्टका' है, एक पूरे दिनकी यह 'एकाष्टका' है अर्थात् प्रहरोंका समय हैं । दिनमें चार प्रहर और रात्रीमें चार प्रहर होते हैं, इन सबका मिलकर नाम 'एकाष्टका' है, यही इस सूक्तकी देवता है । दिनके आठ प्रहरोंका उत्तम उपयोग कैसा करना यह बताना इस सूक्तका उद्देश्य स्पष्ट है । प्रत्येक दिनका योग्य उपयोग होता रहा तो सब आयुका उत्तम उपयोग होगा । सब आयुका यज्ञ करनेका यही तात्पर्य है ।

अंधकारमयी रात्री ।

दिनमें प्रकाश रहता है इसलिये मनुष्य प्रायः निर्भय रहते हैं । रात्रीमें अन्धकार होनेके कारण मनुष्य भयभीत होते हैं इसलिये प्रकाशमय दिनके संबंधमें कुछ कथन करनेकी अपेक्षा अन्धकार पूर्ण रात्रीके विषयमें ही कुछ कहना आवश्यक होता है, यह कार्य द्वितीयसे चतुर्थतक तीन मंत्रों द्वारा हुआ है, इन मंत्रोंका आशय यह है -

'देव भयदायिनी अन्धकारमयी रात्रीका आनन्दसे स्वागत करते हैं, क्योंकि यह रात्री संवत्सरकी पत्नी है, वह हम सबके लिये उत्तम मंगल करनेवाली बने (मं.२) । इस रात्रीको संवत्सरकी छोटी प्रतिमा मानकर उसका स्वागत करना चाहिये, वह हमें दीर्घायु प्रजा, धन और पुष्टि देवे (मं.३) । यही वह है कि जिससे पहली उषा उदित हो गई थी, यही इतर वेला विभागोंमें प्रविष्ट होकर चलती है । इस रात्रीमें बडी महिमाएं है, यह वीर पुत्रको जन्म देनेवाली कुलवधुके समान यशस्विनी रात्री है (मं.४) ।

यह भावार्थ इन तीन मंत्रोंका है । इन मंत्रोंमें रात्रीकी भयानकता दूर करके उसकी मंगलमयता बतायी है । जिस रात्रीको साधारण लोग डरावनी मानते हैं, उसीको वेद ऐसी मंगलमयी, अनंत महिमाओंसे युक्त और कुलवधुके समान भावी यशकी सूचक बताता है । सृष्टिकी घटनाओंकी ओर देखनेका यह वेदका पवित्र दृष्टिकोन है । पाठक इसी दृष्टिकोनसे जगत्की और देखे और उसमें परमात्माकी महिमा अनुभव करें । जैसा दिनमें प्रकाशमय स्वरूप परमात्माका दिखाई देता है उसी प्रकार रात्रीमें उसीका शांत स्वरूप प्रकट होता है, दिनमें विविधताका अनुभव होता है और रात्रीमें वह विविधता मिट जाती है । इस प्रकार दिनमें और रात्रीमें परमात्माका मंगल स्वरूप देखना चाहिये यही वेदकी अभीष्ट है ।

संवत्सरकी प्रतिमा ।

तृतीय मंत्रमें रात्रीको संवत्सरकी प्रतिमा कहा है । संवत्सर वर्षका नाम हैं । वर्ष बडे आकारवाला है उसकी प्रतिमा यह रात्री है । प्रतिमाका अर्थ 'प्रति+मान' है अर्थात् मापनेका साधन । दिन रात्री या दोनों मिलकर अहोरात्र संवत्सरका माप करनेका साधन है, दिनसे ही वर्ष मापा जाता है । यही रात्री संवत्सरकी पत्नी है । संवत्सर पति है और रात्री उसकी पत्नी है । वार्षिक कालका विशाल रूप संवत्सर है और छोटा रूप दिन या रात्री है । यह रात्री -

सा नो अस्तु सुमंगली । (सू. १०, मं.२)

सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।

(सू.१०, मं.३)

महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः । (सू.१०, मं.४)

'यह रात्री हमें मंगलमयी होवे । यह रात्री हमें धन और पुष्टिके साथ दीर्घायु प्रजा देवे । इस रात्रीमें बडे महिमा हैं ।' यह रात्रीका वर्णन निःसंदेह सत्य है । रात्री सचमुच सुमंगली है। इस रात्रीमें निद्रासे विश्राम लेते हुए मनुष्य इतना आराम प्राप्त करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता और जिसका अनुभव हरएकको है । 'जो रात्रीमें रतिक्रिडा करते हैं वे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं । (प्रश्न उप. १।१३)' यह उपनिषद्वचन कहता है कि गृहस्थी लोक गृहस्थधर्मके नियम पालनपूर्वक रात्रीकालमें रति करते हुए और उस आश्रमके योग्य आचरण करते हुए भी ब्रह्मचर्य ही पालन करते हैं । इससे उत्तम सुसन्तान उत्पन्न होती है जो दीर्घायु और तेजस्वी भी होती हैं । इस प्रकार इस रात्रीमें अनेक महिमाएं हैं और इस कारण रात्री बडी उपकारक है । पाठक इस रीतिसे रात्रीका उपकार देखें और इस रात्रीका स्वागत करें । कई कहेंगे कि रात्रीमें चोरादिकोंका तथा हिंसक प्राणियोंका उपद्रव होता है इसलिये रात्री भयदायक है, तो यह कथन भी

ठीक नहीं है, क्योंकि उसी कारण आत्मसक्षाकी शक्ति मनुष्योंमें उत्पन्न होती है और उससे धैर्य, शौर्य, वीर्य, पराक्रम आदि गुण बढते हैं । इस दृष्टिसे भी रात्रीके बडे उपकार ही हैं ।

हवन ।

आगे पंचम मंत्रमें पत्थरोंके द्वारा सोम औषधिका रस निकालना और यज्ञमें हवन करनेके लिये हवि तैयार करनेका वर्णन है । षष्ठ मंत्रमें हरएक प्रकारका हवि घीसे पूर्णतया भिगो कर, घी चूता है ऐसी अवस्थामें हवन सामग्रीकी आहुतियां डालनी चाहिये इत्यादि वर्णन है। यह सब याजकोंके लिये लक्ष्यपूर्वक देखने योग्य है । घीके अन्दर हवाका दोष दूर करनेका सामर्थ्य है, इस कारण हवा शुद्धिके लिये हवन इष्ट ही है । मनुष्य अपने व्यवहारसे अनेक प्रकारके विष हवामें फेंकता है, इसलिये उन रोगोत्पादक विषोंका उपशम करनेके लिये इस प्रकारका हवन करना अत्यंत आवश्यक है । इस प्रकार हवनादि द्वारा वायुकी शुद्धता करनेसे गृहस्थी लोग सुस्ती, बलवान्, नीरोग और सुप्रजासे युक्त होंगे, यह सूचना पंचम मंत्रके उत्तरार्धमें मिलती है, वह सूचना हरएक गृहस्थीको मनमें धारण करना चाहिये । षष्ठ मंत्रके 'उत्तरार्धमें ग्रामीण सप्त पशु मनुष्योंपर प्रेम करते हुए घरमें रहें' ऐसा कहा है । यह गृहस्थाश्रमका स्वरूप है । गृहस्थके घरमें गाय, बैल, घोडे, घोडीयां, भेड, बकरी आदि पशु और उनके बछडे रहें, यह घरकी शोभा है, इनका उपयोग भी है ।

सप्तम मंत्रके द्वितीय भागसे आहुति डालनेवाले चमसका वर्णन करते हुए एक बडे महत्त्वपूर्ण बातका उपदेश किया है। 'आहुति देनेवाला चमस पूर्ण भरकर अग्निके पास चला जावे और वहांसे अग्निकी तेजस्विता लेकर वापस आवे और वह हवन करनेवालेंकी तेजस्विता बढावे ।'

पूर्णा दर्वे परापत, सुपूर्णा पुनरा पत । (सू.१०, मं.७)

'चमस पूर्ण भरकर दान देनेके लिये आगे बढे और वापस आनेके समय भी वहांसे तेज भरकर वापस आवे ।' इसमें चमसका भरकर जाना और भरकर आना लिखा है । दान देनेके समय चमस भरकर यज्ञके पास जाय और अपनी आहुती दे देवे, दान देनेके समय कंजूसी न की जावे, यह बोध यहां मिलता है। जिस देवताको दान दिया है उस देवताके प्रशंसित गुण उस चमसमें आते हैं, चमस खाली होते ही मानो वह देव अपने उस चमसमें भर देता है। उन गुणोंको ग्रहण करके वह चमस वापस आवे और दानदाताको गुणी बनावे । यह आशय यहां है । इस मंत्रके मननसे पाठक बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं । 'यज्ञ' का 'दान और आदान' इस मंत्रके मननसे अच्छी प्रकार ज्ञात हो सकता है । 'जो अपने पास है वह दूसरोंके हितार्थ दान देना और दूसरोंमें जो श्रेष्ठ गुण हों उनको अपनाना' यह यज्ञका तत्व इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है । पाठक इसका मनन करें ।

आगे अष्टम मंत्रका आशय द्वितीय और तृतीय मंत्रोंके आशयके समान ही है इसलिये इस मंत्रपर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है ।

कालका यज्ञ ।

नवम और दशम मंत्रोंमें कालके अवयवोंका नामनिर्देश करके उन कालावयवोंका यज्ञ करनेके संबंधमें बडा महत्त्वपूर्ण उपदेश हैं -

(१) **मास** - महिना । (२) **ऋतु** - दो मासका समय। (३) **आर्तव काल** - दो ऋतुओंसे बननेवाला काल, शीत काल, उष्णकाल, वर्षा काल। (४) **अयन**- तीन ऋतुओंका समय, वर्षके दो अयन होते हैं, दो अयनोंको मानसे गिने हुए वर्षका नाम 'अयन' होता है । (५) **समाः** - तीस दिनोंका एक मास, ऐसे बारह मासोंका अर्थात् ३६० दिनोंका एक वर्ष, 'समा' नामसे प्रसिद्ध है क्योंकि इस प्रकारके वर्षके महिनोंके दिन समसंख्यावाले होते हैं । (६) **संवत्सर** - सौर वर्ष, इस वर्षके ३६५ दिन होते हैं, और मासोके दिनोंमें न्यूनाधिकता होती है । (इसके अतिरिक्त चांद्रवर्ष होता है इसका उल्लेख यहां नहीं किया है उसके दिन ३५४ होते हैं, इसके महिनोंके दिनोंकी संख्या भी न्यूनाधिक होती है ।)

इस प्रकारका 'जो मेरी आयुका काल है वह सब मैं सब भूतोंका पालन करनेवाला जो परमात्मा है उसके लिये समर्पित करता हूं.' अर्थात् मेरी आयुका यज्ञ मैं करता हूं । अपनी आयुका विनियोग जनताकी भलाई करनेके कार्यमें करनेका नाम ही आयुष्यका यज्ञ है । परमात्माका कार्य 'सज्जनोंका पालन और दुर्जनोंका दण्डन करना' है । यही जनताके हितका कार्य है, इस

कार्यके लिये अपना सर्वस्व तन, मन, धन अर्पण करना 'आत्म यज्ञ' करना ही है । इस प्रकारका अपनी आयुका यज्ञ करनेका उपदेश नवम और दशम मंत्रोंमें है, इसलिये ये मंत्र अत्यंत मनन करने योग्य हैं ।

यज्ञका कार्य ।

इन मंत्रोंमें जो यज्ञ करना है वह '(धात्रे, विधात्रे, समृधे, भूतस्य पतये । मं. ९-१०)' धारक, निर्माता, समृद्धिकर्ता, और भूतोंके पालनकर्ताके लिये करना है, अपनी आयु इन कार्योंके कर्ताके लिये समर्पित करना है । (१) जो प्रजाओंका धारण करता है, (२) जो जनताके लिये सुखसाधन निर्माण करता है (३) जो जनताकी समृद्धिकी वृद्धि करता है और (४) जो उन सबका पालन करता है उसके कार्यके लिये अपनी आयुका समर्पण करना आत्मयज्ञका तात्पर्य है । अर्थात् प्रजाहितके इतने कार्योंके लिये अपनी आयुका विनियोग करनेका नाम यज्ञ है । इस प्रकारका आत्मयज्ञ जो करते हैं वे लोकोत्तर दिव्य पुरूष सर्वत्र पूजनीय होते है।

ग्यारहवें मंत्रमें यज्ञका ही वर्णन करते हुए कहा है, कि -

अलुभ्यतः वयं गृहान् उप संविशेम ।

(सू.१०, मं.११)

'लोभ न करते हुए अपने घरमें हम प्रवेश करेंगे ।' अर्थात् हम लोभ न करते हुए घरोमें व्यवहार करेंगे, अथवा हमारे घरहोंका वायुमंडल ही ऐसा होगा कि वहां किसीका लाभ या स्वार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं होगा । जो लोग अपनी आयुका पूर्वोक्त प्रकार यज्ञ करते हैं उनके घरोंका वायुमंडल ऐसा ही होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

शत्रुनाशक इन्द्र ।

बारहवें और तेरहवें मंत्रमें एकाष्टकाके गर्भधारण करनेका और इन्द्र नाम पुत्रको जन्म देनेका वर्णन है । एकाष्टका अहोरात्री है और इसीके गर्भमें सूर्य रहता है और रात्रीके प्रसूत होनेपर सूर्य बाहर आता है, जो प्रकाशके शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है । जो लोग कालका यज्ञ पूर्वोक्त प्रकार करते हैं उनके प्रयत्नसे भी इन्द्र संज्ञक ऐसा विशाल तेज उत्पन्न होता है कि उससे उनके सब शत्रु परास्त होते हैं । यह बेला बडी महिमाएं अपने अन्दर रखती है, इसीका पुत्र (इन्द्र) प्रकाशका उग्र देव है और इसीका पुत्र (सोम) शांतिका देव भी है । (मं.१३)

रात्रीका अथवा उषाका पुत्र सूर्य है, इसीको दिवस्पुत्र भी वेदने कहा है । रात्रीका दूसरा पुत्र चन्द्र है इसको सोम भी कहते हैं । ये दोनों प्रकाशका फैलाव और अन्धकारका नाश करते हैं और जनताको प्रकाश देते हुए मार्ग बता देते हैं । वेदमें इनका विविध प्रकारसे वर्णन हुआ है और बह बडा बोधप्रद है ।

इससे यह बोध लेना होता है कि मनुष्य स्वयं ज्ञान प्राप्त करे और दूसरोंको अपने ज्ञानका प्रकाश देवें । कलानिधि चन्द्रमाके संमान मनुष्यभी स्वयं विविध कलाओंमें पूर्ण प्रवीणता संपादन करके स्वयं कलानिधि बन दूसरोंको कलाओंका अर्थात् हुनरोंका ज्ञान देकर जनताकी उन्नति करे । माताएं अपने संतानोंको इस प्रकारकी शिक्षा देकर बालकोंकी पूर्ण उन्नति करें ।

यह इसकी महिमा जानकर प्रत्येक मनुष्य इस सूक्तके उपदेशके अनुसार अपनी आयुका उत्तम यज्ञ करे और यशका भागी बने ।

॥यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

• • •

हवन से दीर्घ आयुष्य !

(११)

(ऋषिः - ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराः । देवता - इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम्)

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।
शतं तु इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ४ ॥

अर्थ - (**कं जीवनाय**) सुखपूर्वक दीर्घ जीवनके लिये मैं (**त्वा**) तुझको (**अज्ञात - यक्ष्मात् उत राज यक्ष्मात्**) अज्ञात रोगसे और राजयक्ष्मा नामक क्षयरोगसे (**हविषा मुञ्चामि**) हवनसे छुडाता हूं । (**यदि ग्राहिः एतत् एनं जग्राह**) यदि जकडनेवाले रोगने इसको इस प्रकार पकड रखा हो तो (**तस्याः इन्द्राग्नी एनं प्रमुमुक्तं**) उस पीडासे इन्द्र और अग्नि इसको छुडावें ॥१॥

(**यदि क्षितायुः**) यदि समाप्त आयुवाला अथवा (**यदि वा परेतः**) यदि मरनेके करीब पहुंचा हो किंवा (**यदि मृत्योः अन्तिकं नीतः एव**) यदि मृत्युके समीप भी पहुंचा हुआ क्यों न हो, (**तं निर्ऋतेः उपस्थात् आहरामि**) उसको मैं विनाशके पाससे वापस लाता हूं और (**एनं शतशारदाय अस्पार्शम्**) इसको सौ वर्षके दीर्घायुष्यके लिये सुरक्षित करता हूं ॥२॥

(**सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा एनं आहार्षे**) सौ शक्तियोंसे युक्त सौ वीर्योंसे युक्त, शतायु देनेवाले हवनसे इसको मैंने लाया है । (**यथा विश्वस्य दुरितस्य पारं**) जिससे संपूर्ण दुःखोंके पार होके (**एनं इन्द्रः शरदः अति नयति**) इसको इन्द्र सौ वर्षकी पूर्णायुके भी परे पहुंचावे ॥३॥

(**वर्धमानः शतं शरदः जीव**) बढता हुआ सौ शरद् ऋतुओं तक जीता रह (**शतं हेमन्तान्, शतं उ वसन्तान्**) सौ हेमन्त ऋतुओं तक तथा सौ वसन्त ऋतुओं तक जीवित रह । (**इन्द्रः अग्निः सविता बृहस्पतिः ते शतं**) इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति और सविता, तेरे लिये सौ वर्षकी आयु देवें । (**एनं शतायुषा हविषा आहार्षे**) मैंने इसको सौ वर्षकी आयु देनेवाले हविसे यहां लाया है ॥४॥

भावार्थ - तुझे सुखमय दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो इसलिये तुझे ज्ञात और अज्ञात रोगोंसे हवनके द्वारा छुडाता हूं। जकडनेवाले रोगोंने यद्यपि तुझे पकड रखा हो, तथापि इन्द्र और अग्निकी सहायतासे तू उन कष्टोंसे मुक्त हो सकता है ॥१॥

आयु समाप्त हुई हो, करीब मरनेकी अवस्था प्राप्त हुई हो, करीब करीब मृत्युके समीप भी पहुंचा हुआ हो, तो भी उसको उस विनाशकी अवस्थासे मैं वापस लाता हूं और सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करता हूं ॥२॥

हवनमें हजारों शक्तियां है और सैंकडों वीर्य हैं, ऐसे हवनसे इसको मैंने वापस लाया है । यह मनुष्य अब सम्पूर्ण कष्टोंसे पार हुआ है, अब इसको इन्द्र सौ वर्षके भी परे ले जायेगा ॥३॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्येऽ यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ५ ॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥ ६ ॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्येऽ यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान्छतम् ॥ ७ ॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद्बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ - हे (**प्राणापानौ**) प्राण और अपान ! (**प्र विशतं**) प्रवेश करो (**अनड्वाहौ व्रजं इव**) जैसे बैल गोशालामें प्रवेश करते हैं । (**अन्ये मृत्यवः वि यन्तु**) दूसरे अनेक अपमृत्यु दूर हो जावें, (**यान् इतरान् शतं आहुः**) जिनको इतर सौ प्रकारके कहा जाता है ॥५॥

हे (**प्राणापानौ !**) प्राण और अपान ! (**युवं इह एव स्तं**) तुम दोनों यहां ही रहो, (**इतः मा अप गातं**) यहांसे मत दूर जाओ। (**अस्य शरीरं**) इसका शरीर और (**अंगानि**) सब अवयव (**जरसे पुनः वहतं**) वृद्धावस्थाके लिये फिर ले चलो ॥६॥

(**त्वा जरायै परि ददामि**) तुझे वृद्धावस्थाके लिये अर्पण करता हूं । (**त्वा जरायै निधुवामि**) तुझको वृद्धावस्थाके लिये पहुंचाता हूं । (**त्वा जरा भद्रा नेष्ट**) तुझे वृद्धावस्था सुख देवे, (**अन्ये मृत्यवः वि यन्तु**) अन्य अपमृत्यु दूर हो जावें , (**यान् इतरान् शतं आहुः**) जिनको इतर सौ प्रकारके कहा जाता है ॥७॥

(**उक्षणं गां इव रज्ज्वा**) जैसे बैलको अथवा गौको रस्सीसे बांध देते हैं उस प्रकार (**जरिमा त्वा अभि आहत**) बुढापेने तुझको बांधा है । (**यः मृत्युः जायमानं त्वा सुपाशया अभ्यधत्त**) जिस मृत्युने उत्पन्न होते हुए, ही तुझको उत्तम पाशसे बांध रखा है (**ते तं**) तेरे उस मृत्युको (**सत्यस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुञ्चत्**) सत्यके दोनों हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है ॥८॥

भावार्थ - मैंने तुझे सौ वर्षकी आयु प्रदान करनेवाले हवनसे मृत्युसे वापस लाया है । इन्द्र, अग्नि, सविता और बृहस्पति तुझे सौ वर्षकी आयु देवें । अब तू सब प्रकारसे बढता हुआ सौ वर्षतक जीवित रह ॥४॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों इस मनुष्यमें ऐसे प्रवेश करो जैसे बैल गोशालामें प्रवेश करते हैं । अन्य सैंकडो अपमृत्यु इससे दूर भाग जावें ॥५॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों इसके शरीरमें निवास करो, यहांसे दूर मत जाओ । इसके शरीरको और संपूर्ण अवयवोंको पूर्ण वृद्ध अवस्थातक अच्छी प्रकार चलाओ ॥६॥

हे मनुष्य ! मैं अब तुझको वृद्धावस्थाके लिये समर्पित करता हूं । वृद्धावस्थातक मैं तुझको आयु देता हूं । तुझे आरोग्यपूर्ण बुढापा प्राप्त हो और सब अन्य अपमृत्यु तुझसे अब दूर हों ॥७॥

जैसे गाय या बैलको एक स्थानपर रस्सीसे बांध देते हैं वैसे अब तेरे साथ वृद्धावस्थाकी पूर्ण आयु बांधी गई है । जो अपमृत्यु जन्मते ही तेरे साथ लगा हुआ था उस अपमृत्युसे तुझको सत्यके हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है ॥८॥

हवनसे दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।

हवनकी बडी भारी शक्ति है, इससे आरोग्य, बल, दीर्घ आयुष्य आदि प्राप्त हो सकता है । यज्ञयागोंमें हवन होता है, ये यज्ञयाग ऋतुओंकी संधियोंमे किये जाते हैं और इनसे ऋतुपरिवर्तनके कारण होनेवाले रोगादि दूर हो जाते हैं इस विषयमें कहा है -

औषधियोंके यज्ञ ।

भैषज्ययज्ञा वा एते । तस्माद्दतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु व्याधिजायते ॥ (गो. ब्रा.उ.प्र. ९।१९)

ये औषधियोंके महामुख्य है, इसलिये ऋतुसंधियोंमें ये यज्ञ किये जाते हैं इसका कारण यह है कि ऋतुसंधियोंमें व्याधियां होती है ।'

ऋतुपरिवर्तन के कारण हवा बिगडती है, इससे रोग होते हैं । इन रोगोंका प्रतिबंध करनेके लिये ये औषधियाग किये जाते है । रोगनाशक, आरोग्यवर्धक, और पुष्टिकारक तथा बलवर्धक औषधियोंका इनमें हवन किया जाता है। जो यज्ञ रोगनाशक, आरोग्यवर्धक, पुष्टिकारक और बलवर्धक होंगे वे दीर्घ आयु देनेवाले निःसंदेह होंगे इसमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता । इसलिये इस सूक्तमें जो हवनसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त करनेका संदेश दिया है वह अवश्य विचार करने योग्य है ।

हवनसे रोग दूर करना ।

हवनसे रोग दूर करनेके विषयमें इस सूक्तका कथन मनन करने योग्य है -

अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात् त्वा मुञ्चामि ।

(सू.११,मं.१)

तस्याः (ग्राह्याः) इन्द्राग्नी एने प्रमुमुक्तम् ।

(सू.११,मं.१)

'अज्ञात रोग और ज्ञात रोग, या राजयक्ष्मा रोग इन रोगोंसे रोगमुक्त कर देते हैं । पकडनेवाले रोगसे इन्द्र और अग्नि इस रोगीको मुक्त कर देते हैं ।'

इस मंत्रमें हवनसे ज्ञात और अज्ञात रोगोंकी दूर हो जानेकी संभावना दर्शायी है । ज्ञात रोग वे होते हैं कि जिनकी पहचान संपूर्ण लक्षणोंसे आसानीसे होती है । तथा अज्ञात रोग उनको कहते हैं कि जो ठीक प्रकार पहचाने नही जाते अथवा जिनके विषयमें वैद्योंकी परीक्षामें मतभेद हुआ करता है । कोई वैद्य एक रोग बताता है तो दूसरा वैद्य दूसरा रोग बताता है । इस प्रकार रोग ज्ञात हो अथवा अज्ञात हो, उसको हवन द्वारा दूर किया जा सकता है,अर्थात् अग्निमें योग्य औषधियोंका हवन करनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है । विविध रोगोंकी निवृत्तिके लिये अन्यान्य औषधियोंका हवन करनेकी आवश्यकता है और कुछ पदार्थ ऐसे भी हवनमें होते होंगे कि जिनसे सामान्यतया आरोग्य प्राप्त होता हो । ऐसे योग्य औषधियोंके संमिलित हवनसे मनुष्य पूर्ण नीरोग और दीर्घायुसे युक्त हो जाता है ।

हवनका परिणाम ।

हवनका परिणाम यहांतक होता है कि आसन्न मरण रोगी भी रोगमुक्त होकर आरोग्य प्राप्त करता है । इस विषयमें द्वितीय मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा कहता है कि, 'यदि यह रोगी करीब मरनेकी अवस्थातक पहुंच चुका हो, मृत्युके पास भी गया हो, इसकी आयु भी समाप्त हो चुकी हो, तो भी हवनसे इसकी सब आपत्ति दूर हो सकती है और इसको सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो सकती है ।' (मं.२)

शतायु करनेवाला हवन ।

इस वर्णनसे हवनका अपूर्व आरोग्यवर्धक परिणाम ज्ञात हो सकता है । तृतीय मंत्रमें हवनका नाम ही 'शतायू हवि' कहा है अर्थात् इस हवनसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त हो सकती है । इस 'शतायु हवि' के अंदर शतवीर्य अर्थात् सौ प्रकारके बल होते हैं और (सहस्र - अक्ष) हजार प्रकारकी शक्तियां होती हैं । इससे-

नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।

(सू.११, मं.३)

'सब दुरितको दूर किया जाता है।' दुरित नाम पापका है । यह 'दुरित' (दुः -इत) वह है कि जो दुःख उत्पन्न करनेवाला शरीरमें घुसा होता है, यह शरीरमें घुसकर नाना प्रकारकी पीडाएं उत्पन्न करता है । हवनसे यह दुरित अर्थात् रोगोत्पादके द्रव्य शरीरसे दूर किया जाता है ।

चतुर्थ मंत्रमें विश्वासपूर्वक कहा है कि अब तो 'हवन किया गया है, इन्द्र, अग्नि, सविता, बृहस्पति आदि देवताओंसे शक्तियां प्राप्त की गई है, अब तू विश्वासपूर्वक अपनी सब शक्तियां बढाता हुआ सौ वर्षतक जीता रह। अब तुम्हे मृत्युका भय नहीं है । (मं.४)' हवनका ऐसा सुपरिणाम होता है और इतना विश्वास उत्पन्न हो जाता

है । यह हवनका परिणाम मननपूर्वक देखने योग्य है ।

पंचम और षष्ठ मंत्रोंमें प्राण और अपानको आदेशपूर्वक कहा है कि - 'हे प्राण और अपान! तुम अब इसी पुरूषके देहमें घुसो, यहां ही अपने कार्य करो और इसके शरीरको तथा संपूर्ण इन्द्रियोंको पूर्ण आयुकी समाप्तितक अपने अपने कार्य करनेके योग्य रखो । तथा इसके शरीरसे पृथक् न होओ । तुम्हारे कार्यसे इसके संपूर्ण अपमृत्यु दूर हो जावें । (मं.५-६)' जब पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है और हवनसे शरीरमें नवजीवन संचारित होता है, तब शरीरमें स्थिर रूपसे प्राणापान रहेंगे ही । यह हवनका परिणाम है ।

सप्तम मंत्रमें कहा है कि - 'हे मनुष्य! अब मैं तुझको वृद्ध अवस्थाके लिये समर्पण करता हूं, तुझे सुस्समयी वृद्ध अवस्था प्राप्त होवे और सब अपमृत्यु तुझसे दूर हो जावें ' (मं.७) । वृद्ध अवस्थाकी गोदमें समर्पण करनेका तात्पर्य यही है कि पूर्ण वृद्धावस्था होनेतक अर्थात् सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक जीवित रहना ।

मरणका पाश ।

अष्टम मंत्रमें एक बडा भारी सिद्धांत कहा है कि हरएक मनुष्य जन्मते ही मृत्युके पाशसे बांधा जाता है -

यस्त्वा मृत्युरभ्याधत्त जायमानं सुपाशया ।

(सू.११, मं.६)

'मृत्यु तुझको अर्थात् हरएक प्राणिमात्रका जन्मते ही उत्तम पाशसे बांधकर रखता है ।' कोई मनुष्य अथवा कोई प्राणी मृत्युके इस पाशसे छुटा नहीं होता । जो जन्मको प्राप्त हुआ है वह अवश्य किसी न किसी समय मरेगा ही । सब उत्पन्न हुए प्राणिमात्रोंको मृत्युने अपने पाशोंसे ऐसा जकड कर बांधा हैं कि वे इधर उधर जा नहीं सकते और सब मृत्युके वशमें होते हैं ।

'सब जन्म लेनेवाले प्राणियोंको एक वार अवश्य मरना है' यह इस मंत्रका कथन हरएकको अवश्य विचार करने योग्य है । हरएकको स्मरण रखना चाहिये कि अपने सिरपर मृत्युने पांव रखा हुआ है । इस विचारसे मनुष्यको सत्य धर्मका पालन करना चाहिये । सत्य ही इस मृत्युसे बचानेवाला है।

सत्यसे सुरक्षितता ।

मृत्युके पाशसे बचानेवाला एकमात्र उपाय 'सत्य' है यह अष्टम मंत्रने बताया है -

तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ।

(सू.११, मं.८)

'बृहस्पति तुझे सत्यके संरक्षक हाथोंसे उस मृत्युसे बचाता है ।' अर्थात् जो मनुष्य सत्यका पालन करता है उसका बचाव परमेश्वर करता है । वस्तुतः सत्यसे ही उसका बचाव होता है । सत्यका रक्षण ऐसा है कि जिससे दूसरे किसी रक्षणकी तुलना नहीं हो सकती, अर्थात् एक मनुष्य अपना बचाव सत्यके हाथोंसे करता है और दूसरा मनुष्य अपना बचाव शस्त्रास्त्रोंसे करता है तो सत्यसे अपना बचाव करनेवाला मनुष्य अधिक सुरक्षित है, अपेक्षा उसके कि जो अपने आपको शस्त्रोंसे रक्षित समझता है । सत्याग्रहसे अपनी रक्षा करना ब्राह्मबल है और शस्त्रास्त्रोंसे अपनी रक्षा करना क्षात्रबल है । क्षात्रबलसे ब्राह्मबल अधिक श्रेष्ठ है इसमें किसीको संदेह ही नहीं है ।

सत्यपालनसे दीर्घायुकी प्राप्ति।

यहां हमें सूचना मिलती है कि दीर्घायुकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करनेवालेको सत्यका पालन करना अत्यंत आवश्यक है । सत्यके संरक्षक हाथोंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य ही दीर्घजीवी हो सकता है ।

इस मंत्रमें जो हवनका महत्त्व वर्णन किया है वह यज्ञशास्त्रमें प्रसिद्ध है । यज्ञमें जनताकी भलाई, आरोग्यप्राप्ति आदि होनेका वर्णन सब यज्ञ शास्त्र कर रहे हैं, इस दृष्टिसे यह सूक्त एक आरोग्यप्राप्तिका नवीन साधन बता रहा है ।

किस रोगके दूर करनेके लिये किस हवन सामग्रीका हवन होना चाहिये इस विषयमें यहां कुछ भी नहीं कहा है, परन्तु हवनका सर्वसामान्य परिणाम ही यहां बताया है । हरएक रोगके दूर करनेके लिये विशेष प्रकारके हवनोंका ज्ञान अन्यान्य सूक्तोंसे प्राप्त करना चाहिये । वैदिक विद्याओंकी खोज करनेवालोंके लिये यह एक बडा महत्त्वपूर्ण खोजका विषय है । खोज करनेवाले इसकी खोज अवश्य करें । इससे जैसा व्यक्तिका भला हो सकता है, वैसा ही राष्ट्रका भी भला हो सकता है ।

• • •

गृह निर्माण ।

(१२)

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - शाला, वास्तोष्पतिः)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥ १ ॥
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥
धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ३ ॥
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ ४ ॥

अर्थ - (इह एव ध्रुवां शालां निमिनोमि) इसी स्थानपर सुदृढ शालाको बनाता हूं । वह शाला (घृतं उक्षमाणा क्षेमे तिष्ठाति) धी सींचती हुई हमारे कल्याणके लिये ठहरी रहेगी । हे (शाले) घर ! (तां त्वा सर्ववीराः अरिष्टवीराः सुवीराः उप संचरेम) तेरे चारों ओर हम सब वीर विनष्ट न होते हुए उत्तम पराक्रमी बनकर फिरते रहेंगे ॥१॥

हे शाले ! तू (**अश्वावती गोमती सूनृतावती**) घोडोंवाली, गौओंवाली और मधुर भाषणोंवाली होकर (**इह एव ध्रुवा प्रतितिष्ठ**) यहां ही स्थिर रह । तथा (**ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती**) अन्नवाली, घीवाली और दूधवाली होकर (**महते सौभगाय उच्छ्यस्व**) बडे सौभाग्यके लिये उंची बनकर खडी रह ॥२॥

हे शाले ! (**बृहत् - छन्दाः पूतिधान्या**) बडे छतवाली और पवित्र धान्यवाली तथा (**धरूणी असि**) धान्यादिका भण्डार धारण करनेवाली तू है । (**त्वा वस्तः कुमारः आ गमेत्**) तेरे अंदर बछडा और बालक आ जावे । (**आस्पन्द - माना धेनवः सायं आ**) कूदती हुई गौवें सायंकालके समय आ जावें ॥३॥

(**इमां शालां**) इस शालाको सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति (**प्रजानन् नि मिनोति**) जानता हुआ निर्माण करे । (**मरूतः उद्धा घृतेन उक्षन्तु**) मरूत् गण जलसे और घीसे सींचे, तथा (**भगः राजा नः कृषिं नि तनोतु**) भाग्यवान् राजा हमारे लिये कृषिको बढावे ॥४॥

भावार्थ - इस उत्तम स्थानपर मैं उत्तम और सुदृढ घर बनाता हूं, जिसमें घी आदि खाने पीनेके पदार्थ बहुत रहें और जो सब प्रकारके स्वास्थ्य साधनोंसे परिपूर्ण हो । हम सब प्रकारके शौर्यवीर्यादि गुणोंसे युक्त होकर और किसी प्रकार कष्टोंको प्राप्त न होते हुए इस घरके चारों ओर घूमा करेंगे ॥१॥

इस घरमें घोडे, गौवें, बैल आदि पशु बहुत हों, यह घर उत्तम मीठे भाषणसे युक्त हो, अन्न, घी, दूध आदि स्वाद्य पेय इसमें बहुत हों और इसमें रहनेवालोंको बडे सौभाग्यकी प्राप्ति हो ॥२॥

इस घरमें धान्यादिका बडा भण्डार हो, उस भंडारमें शुद्ध और पवित्र धान्य भरा रहे । ऐसे घरमें बालक और बछडे घूमते रहें और सायंकालसे आनंदसे नाचती हुई गौवें आ जांय ॥३॥

इस शालाके निर्माणसे सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति ये देव सहायता दें । मरूत् गण इस घरमें विपुल घी देनेमें सहायक हों तथा राज भग कृषि बढानेमें सहायता देवे ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निर्मितास्यग्ने ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥ ५ ॥
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥
इमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
इमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥
पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ ९ ॥

अर्थ - हे (मानस्य पत्नि) संमानकी रक्षक, (शरणा स्योना देवी) अंदर आश्रय करने योग्य, सुखदायक, दिव्य प्रकाशमान् ऐसी (देवेभिः अग्ने निमिता असि) देवों द्वारा पहले बनायी हुई है । (तृणं वसाना त्वं सुमनाः असः) घासको पहने हुए तू उत्तम मनवाली हो (अथ अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः) और हम सबके लिये वीरोंसे युक्त धन दे ॥५॥

हे (वंश) वास! तू (ऋतेन स्थूणां अधिरोह) अपने सीधेपनसे अपने आधारपर चढ और (उग्रः विराजन् शत्रून् अपवृङ्क्ष्व) उग्र बनकर प्रकाशता हुआ शत्रुओंको हटा दे । (ते गृहाणां उपसत्तारः मा रिषन्) तेरे घरोके आश्रयसे रहनेवाले हिंसित न होवें । हे शाले ! हम (सर्ववीराः शतं शरदः जीवेम) सब वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्ष जीते रहेंगे ॥६॥

(इमां कुमारः आ) इस शालाके पास बालक आवे, (तरूणः आ) तरूण पुरूष आवे, (जगता सह वत्सः आ) चलनेवालोंके साथ बछडा भी आवे । (इमां परिस्रुतः कुम्भः) इसके पास मधुररससे भरा हुआ घडा (दध्नः कलशैः आ अगुः) दहीके कलशोंके साथ आ जावे ॥७॥

हे (नारि) स्त्री! (एतं पूर्णं कुम्भं) इस पूर्ण भरे घडेको तथा (अमृतेन संभृतां घृतस्य धारां) अमृतसे भरी हुई घीकी धाराको (प्र भर) अच्छी प्रकार भरकर ला । (पातॄन् अमृतेन सं अङ्ग्धि) पीनेवालोंको अमृतसे अच्छी प्रकार भर दे । (इष्टापूर्ते एनां अभिरक्षति) यज्ञ और अन्नदान इस शालाकी रक्षा करते हैं ॥८॥

(इमाः यक्ष्मनाशिनीः अयक्ष्माः आपः) ये रोगनाशक और स्वयं रोगरहित जल (प्र आभराभि) मैं भर लाता हूं। (अमृतेन अग्निना सह) अमृत अग्निके साथ (गृहान् उप प्र सीदामि) घरोंमें जाकर बैंठता हूं ॥९॥

भावार्थ - घर अंदर निवास करने योग्य, सुखदायक है, यह एक संमानका साधन भी है । पहले यह देवों द्वारा बनाया गया था । घासके छप्परसे भी यह बनता है । ऐसे घरसे हमारा मन शुभ संकल्पवाला होवे और हमें वीरोंसे युक्त धन प्राप्त हों ॥५॥

सीधे स्तंभ पर सीधे बांस रस्से जावें और इस रीतिसे विरोधीयोंको दूर किया जावे । घरोंके आश्रयसे रहनेवाले दुःखी, कष्टी या विनष्ट न हों । इसमें रहनेवाले सब वीर होकर सौ वर्षतक जीवित रहें ॥६॥

इस घरके पास बालक, तरूण आदि सब आ जावें । बछडे और अन्य घरके पशु, पक्षी भी घूमते रहें । इस घरमें शहदके मीठे रससे भरे हुए घडे तथा दहीसे भरे हुए घडे बहुत हों ॥७॥

स्त्रियां इन घडोंको भरकर लावें और घीके घडे भी बहुत लावें और पीनेवालोंको यह दूध, दही, घी आदि सब रस भरपूर पिलावें । क्योंकि इनका दान ही घरकी रक्षा करता है ॥८॥

घरमें पीनेके लिये ऐसा जल लाया जावे कि जो रोगनाशक और आरोग्यवर्धक हो । घरमें अगटी भी हो जिसके पास जाकर लोग शीतका निवारण करके आनंद प्राप्त करें ॥९॥

घरकी बनावट ।

जो गृहस्थी हैं उसको घर बनाकर रहना आवश्यक है, फिर वह घर घाससे बनी हुई (तृणं वसाना । मं.५) झोपडीके समान हो अथवा बडा सीधा हो । घर किसी भी प्रकारका हो, परंतु गृहस्थीके लिये वह अवश्य चाहिये, नहीं ता गृहस्थका 'गृह - स्थ - पन' ही नहीं सिद्ध होगा ।

घर बनाने योग्य स्थान ।

घरके लिये स्थान भी योग्य होना चाहिये, रमणीय होना चाहिये और आरोग्यकारक होना चाहिये, इस विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं -

१ **क्षेमे** (मं.१) - सुरक्षित, शांति देनेवाला, सुखकारक, आरोग्यदायक, निर्भय ऐसा स्थान घरके लिये हो ।

२ **ध्रुवा** (मं. १,२) - स्थिर, सुदृढ, जहां बुनियाद स्थिर और दृढ हो सकती है ।

इस प्रकारकी भूमिपर घर बनाना चाहिये और वह घर अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुदृढ, (ध्रुवा) स्थिर और मजबूत बनाना चाहिये, ताकि वारंवार उसकी मरम्मत करनेका व्यय उठाना न पडे ।

घर कैसा बनाया जावे ?

घरके कमरे जहांतक हो सकें वहांतक विस्तीर्ण बनाये जावें । **'बृहत् - छंदाः** (मं.३)' अर्थात् बडे बडे छतवाले कमरोंसे युक्त घर हों । घरमें संकुचित स्थान न हो क्योंकि छोटे छोटे कमरोंमें रहनेवालोंके विचार भी संकुचित बनते जाते हैं । इस लिये अपनी शक्तिके अनुसार जहांतक विस्तीर्ण बनाना संभव हो वहांतक प्रशस्त घर बनाया जावे, जहां बहुत इष्टमित्र अतिथि आदि (**शरणा**। मं.५) आ जांय और (**स्योना**। मं.५) विश्राम ले सकें ।

संमानका स्थान ।

घर गृहस्थीके लिये बडा संमानका (**शाला मानस्य पत्नी** । मं.५) स्थान है, अपना निजका घर होनेसे वह एक प्रतिष्ठाका स्थान हो जाता है । इष्टमित्रोंको सुख पहुंचानेका वह एक बडा स्थान होता है । इसलिये पूर्वोक्त प्रकार घर बनाना चाहिये । घर बनते ही घरमें अन्यान्य इकट्ठे करने चाहिये, इस विषयमें निम्न लिखित संकेत विचार करने योग्य हैं -

१ **अश्वावती** (मं.२) - घरमें घोडे हों, अर्थात् गृहस्थीके पास घोडे, घोडियां हों । यह शौर्यका साधन है ।

२ **गोमती** (मं. २) - घरमें गौएँ हो। यह पुष्टिका साधन है, गौसे दूध मिलता है जिसको पीकर मनुष्य पुष्ट होते हैं । बैलोंसे खेती होती है ।

धेनवः आस्पन्दमानाः सायं आ (मं.३) - सायंकालके समय गौवें आनंदसे नाचती हुई आ जावें ।

३ **पयस्वती** (मं.२)- घरमें बहुत दूध हों ।

४ **घृतवती** (मं.२) - घरमें विपुल घी हो ।

५ **घृतं उक्षमाणा** (मं.१) - घी देनेवाला, अर्थात् अतिथि आदिके लिये विपुल घी देनेवाला घर हो । घरके लोग अन्नदानमें कंजूसी न करें ।

६ **ऊर्जस्वती** (मं.२) - घरमें बहुत अन्न हो, खानपानके पदार्थ विपुल हों ।

७ **धरूणी** (मं.३) - जिसमें धान्यादिका बडा भंडार हों, जिसमें संग्रहस्थान हों, और वहां सब प्रकारके पदार्थ उत्तम अवस्थामें मिलें ।

८ **पूतिधान्या** (मं. ६) - घरमें पवित्र धान्य हो, जो रोगादि उत्पन्न करनेवाला न हो, उत्तम अवस्थामें हरएक प्रकारके पदार्थ हों, जो खानेसे शरीरकी पुष्टि और मनका समाधान हो । घरमें धान्य लानेके समय वह केवल सस्ता मिलता है इसलिये लाया न जाय, परंतु लानेके समय देखा जाय, कि वह पवित्र, शुद्ध, नीरोग और पोषक है वा नहीं ।

९ **परिस्रुतः कुम्भः** (मं.७) - मधुर शहदसे भरा हुआ घडा अथवा अनेक घडे घरमें सदा रहें ।

१० **दघ्नः कलशैः** (मं.७) - दहीसे परिपूर्ण भरे हुए कलश घरमें हों ।

११ **घृतस्य कुम्भम्** (मं.८) - उत्तम घीसे भरे हुए घट घरमें हों ।

१२ **अयक्ष्मा यक्ष्मनाशिनीः आपः** (मं.९) - नीरोग और रोग दूर करनेवाले शुद्ध जल घडोंमें भर कर घरमें रखा जावे ।

इत्यादि शब्दों द्वारा इस सूक्तमें घरका वर्णन किया है । इन शब्दोंके मननसे पाठक स्वयं जान सकते हैं कि घरमें कैसी व्यवस्था रखना चाहिये और घर कैसा धनधान्यसंपन्न बनाना चाहिये । तथा -